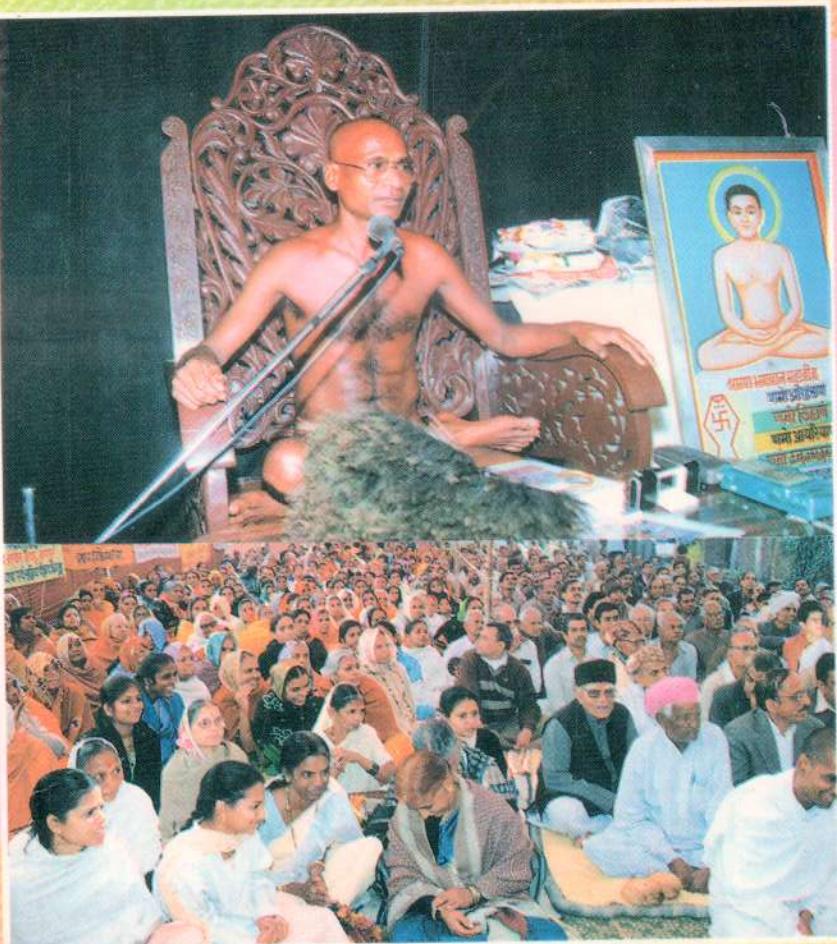


कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हर्ता ?!



धर्मसभा को सम्बोधीत करते हुए आचार्य श्री कनकनन्दीजी गुरुदेव

वैज्ञानिक धर्मचार्य कनकनन्दीजी

कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हर्ता ?!

कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हर्ता ?!



अर्थ सौजन्यता

कँवरीलाल सरावगी पाण्ड्या, श्रीमती मैनादेवी सरावगी
सी-49, शास्त्रीनगर-भीलवाड़ा-311001(राज.)

फोन : (01482) 518555/50748

लेखक

वैज्ञानिक धर्मचार्य श्री कनकनन्दी गुरुदेव

कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हर्ता ?!

धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान तथा

धर्म दर्शन सेवा संस्थान (पं. क्र. 18 उदयपुर 01-02) ग्रन्थांक - 130

ग्रन्थ : कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हर्ता ?

ग्रन्थकर्ता - वैज्ञानिक धर्मचार्य कनकनन्दी गुरुदेव

विचित्र पूर्ण विशाल विश्व तथा विश्व के सम्पूर्ण जीवों की विभिन्न भिन्नता, विचित्रता, क्रिया-प्रतिक्रिया, जन्म-मृत्यु, सुख-दुःख; हानि-लाभ, जय-पराजय, गति, जाति आदि के कारणों का समीक्षात्मक वर्णन इस कृति में है। विश्व प्राकृतिक एवं शाश्वतिक होने से तथा प्रत्येक जीव स्वयं का कर्ता-धर्ता-भोक्ता-हर्ता होने से वह स्वयं का विकास या विनाश स्वयं करने में समर्थ है - इससे जीव स्वतंत्र, स्वावलंबी, साहसी, आशावादी, होकर पुरुषार्थ के माध्यम से विकास कर सकता है तथा इसके विपरीत कारणों से स्वयं का विनाश कर सकता है। दार्शनिक एवं वैज्ञानिक दृष्टि से इस विषय को मैंने "विश्व विज्ञान रहस्य", "विश्व द्रव्य विज्ञान" कृतियों में वर्णन किया है किन्तु सामान्य जन के लिए सरल भाषा एवं पढ़ति से इसमें वर्णन किया है।

द्रव्यदाता : श्री कान्तिलाल शान्तिलाल झवेरी

98, झवेरी बाजार बिल्डिंग, मुंबई-2, फोन : (022) 6481122

धर्म-दर्शन-विज्ञान शोध संस्थान का इंटरनेट एवं ई-मेल

www.jainkanaknandhi.org.

E-Mail - info@jainkanaknandhi.org.

jainkanaknandhi@rediffmail.com

password - kanakanandhi

संस्करण - प्रथम - 2001

प्रतियाँ - 1000

मूल्य - सत्य ज्ञान प्रचारार्थ आप का उदार सहयोग - 11.00

कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हर्ता ?!

प्रकाशन एवं प्राप्ति स्थान-

(1) श्री सुशीलचन्द्रजी जैन- फोन. नं. (01234) 62845

'धर्म-दर्शन-विज्ञान शोध संस्थान' निकट दि. जैन धर्माशाला, बड़ौत

(2) श्रीमती रत्नमाला जैन C/o डॉ. राजमलजी जैन

4-5 आदर्श कॉलोनी पुलाँ. उदयपुर (राज.) फो. नं. (0294) 440793

(3) श्री गुणपालजी जैन

बेहड़ा भवन 87/1 कुंदनपुरा मुजफ्फरनगर फो. नं. : (0131) 450229

(4) श्रीमती लक्ष्मीगुरुचरण जी जैन

144 मुवी टावर नीयर, मिल्लतनगर लोखण्डवाला कॉम्प्लेक्स,
अंधेरी (प.) मुंबई-400053

फोन नं. : (022) 6327152, 6312124, 6327152

(5) 'सेवाश्री' सुरेखा जैन (शिक्षिका) W/O वीरेन्द्रकुमार डालचन्दजी गड्डिया
कपड़े के व्यापारी - सलुम्बर जि. उदयपुर पिन. 313001

फोन नं. : (02906) 32043

(6) श्री महावीर कुमार जैन

13 अग्रसेन कॉलोनी, दादाबाड़ी कोटा फोन नं. : (0744) 410818

(7) धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान

C/o चन्द्रप्रभु मंदिर, आयड़, छोटूलाल चित्तोड़ा

आयड़ बस स्टोप के पास, उदयपुर-313001 (राज.)

फोन न. 413565

लेसर टाईप सेटर्स : श्री कुन्तुसागर ग्राफिक्स सेन्टर 25, शिरोमणि बंगलोज,
सी.टी.एम. चार रस्ता के पास, अहमदाबाद-380026

फोन - 5892744, 5891771

श्रुत-परम्परा को कायम रखने में आ. कनकनंदी का अपूर्व योगदान

आ. ऋषिश्री

संघस्थ-आचार्य कनकनंदीजी गुरुदेव

हमारे पूर्वाचार्यों को इस बात का अच्छी तरह से ज्ञान था कि पंचमकाल में मन को रिंथर रखने के लिए आगम ग्रंथ ही सहायक हो सकते हैं। अतः हमारे आचार्यों ने करुणा बुद्धि से ओत-प्रोत होकर आध्यात्मिक धरातल पर रिंथर होकर आत्मचिंतन के नवनीत को ताङ्पत्र, भोजपत्र पर लिपिबद्ध किया था। बाद में क्रमशः काल परिवर्तनानुसार उत्तरवर्ती जिनवाणी आराधकों ने उन्हीं ग्रंथों की हजारों प्रतियाँ लिपिबद्ध करवा कर मंदिरों के शास्त्र भण्डारों में विराजित करवायी। साधु सतों की प्रेरणा, मार्गदर्शनानुसार अनेकों धीमान्, श्रीमान् श्रेष्ठियों ने अनेकों ग्रंथों की हजारों प्रतियाँ लिपिबद्ध करवा कर वितरित की। वर्तमान समय में पूर्ववर्ती आचार्यों की परम्परा को कायम रखते हुए पूज्य वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनंदीजी गुरुदेव ने बहुत ही कम अवधि में सभी विषयों के ऊपर साहित्य लिखकर श्रुत का जो प्रचार-प्रसार किया है वह भारतवासीयों की जैनसमाज के लिए ही क्या संपूर्ण विश्व के प्राणियों के लिए एक बहुत बड़ा उपकार है। धन्य हैं पूज्य गुरुदेव! जिन्होंने बाल्यावस्था से लेकर अपना संपूर्ण जीवन श्रुत के प्रचार-प्रसार, संरक्षण-संवर्धन करने के लिए नियोजित किया है। पूज्य गुरुदेव की जिज्ञासु विद्यार्थी की भाँति नया-नया सीखने की प्रवृत्ति एवं योग्य गुरु की भाँति शिष्यों को सुयोग्य शिक्षण देने की कला ये दोहरी भूमिका अत्यंत ही विलक्षण एवं सभी को आश्चर्यकारी लगती है।

किसी भी परिवार, समाज, राष्ट्र, विश्व, धर्म, दर्शन, सभ्यता, संस्कृति, रीति रिवाज, मान्यतायें, परम्पराओं की प्राचीनता, मौलिकता उसके साहित्य से ही आँकी जाती है। लेकिन मुझे इस बात का गहरा दुःख है कि हमारी जैन संस्कृति को नष्ट करने के लिए अनेकों विध्वंशकारियों ने उपद्रव किये, समय-समय पर अनेकों श्रेष्ठ, महानतम ग्रंथों की होलियाँ जलायी गयी, अनेकों ग्रंथ जल में प्रवाहित किये गये फिर भी हमारे मनीषी साधु संत, श्रावकों ने ऐसी विषम परिस्थितियों में से भी ग्रंथों को सुरक्षित बचाकर हमें प्राचीन मौलिक धरोहर विरासत में प्रदान की।

लेकिन आज हम उन शास्त्र भण्डारों को जीर्ण-शीर्ण; उजड़ते हुए देख रहे हैं। ग्रंथों की धूल, सीलन, दीमक आदि से बचाव नहीं कर पा रहे हैं। यदि हम अभी भी जागृत नहीं हुए तो निश्चित ही हमारी जैन संस्कृति का नामोनिशान नहीं बचेगा। लेकिन मुझे इस बात को लिखते हुए बड़े ही गौरव का अनुभव, अहसास होता है कि श्रुत के प्रचार-प्रसार, संरक्षण, संवर्धन में पूज्य कनकनंदी जी गुरुदेव ने बहुत ही सशक्त बीड़ा उठाकर जन-जन की सुप्त-गुप्त चेतना को जागृत करके साहित्यिक क्षेत्र में बहुत बड़ी क्रांति करके अलौकिक समृद्धिशाली कार्य किये हैं।

15 वर्ष की अल्प समयावधि में 6 भाषाओं में लगभग सभी विषयों के ऊपर 130 शोधपूर्ण ग्रंथ लिखकर जैन संस्कृति के ज्ञान का प्रचार-प्रसार भारत में ही नहीं इंटरनेट, शिविर, राष्ट्रीय संगोष्ठी आदि के माध्यम से संपूर्ण विश्व में किया है। यह समस्त भारतवर्षीय जैन समाज के लिए बहुत बड़े गौरव एवं पुण्य-सौभाग्य की बात है। गुरुदेव के इस महान् कार्य को और भी अधिक सशक्त, सुदृढ़, प्रचारति-प्रसारित-प्रभावित करने हेतु हम सभी एकता, संगठन, प्रेम, वात्सल्य के सूत्रों में बाँधकर गुरुदेव का सहयोग-सहकार निम्नांकित बिन्दुओं के आधार पर करें।

1. समस्त प्राचीन – अर्वाचीन ग्रंथों को शास्त्र भण्डारों से बाहर निकालकर धूप-हवा देकर उन्हें सुरक्षित करें।

2. अप्रकाशित पाण्डुलिपियों का उचित संपादन कराकर प्रकाशित करवाना तथा प्राचीन ग्रन्थों की आधुनिक वैज्ञानिक समीक्षा करके प्रकाशित करना।

3. जिन विद्वानों ने पाण्डुलिपियों का उचित संपादन किया हो उनका सम्मान करना तथा आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि सम्पन्न लेखक कों प्रोत्साहित करना।

4. विभिन्न अवसरों पर शास्त्र भण्डारों में श्रेष्ठ, उच्च, आदर्श ग्रंथों की वृद्धि करना एवं ग्रंथों की उचित कीमत रखकर पाठक गणों को वितरित करना तथा ग्रन्थों के मूल्य कम करने के लिए आर्थिक सहयोग करना।

5. विशेष पर्वों या विभिन्न अवसरों पर जैसे – शादी, जन्मदिन इत्यादि में ग्रंथ प्रकाशित करवाना या भेंट में ग्रंथ बाँटना।

6. अपने-2 यहाँ के मंदिरों में स्वाध्याय की नियमित परंपरा रखना।

7. बच्चों के लिए धार्मिक पाठशालाओं का अनिवार्य नियम बनाना।

8. जीर्ण-शीर्ण ग्रंथों की जिल्द वेष्टन चढ़ाकर सुरक्षा करना।

9. समय-2 पर धार्मिक शिविर, संगोष्ठी, प्रश्नमंच, प्रतियोगिता इत्यादि कार्य करना तथा करने वालों को हर तरह के सहयोग करना।

10. श्रुत की रक्षा-सुरक्षा, संरक्षण-संवर्द्धन, प्रचार-प्रसार हेतु तन-मन-धन, समय त्रम से कार्य करना तथा करने वालों को हर प्रकार से सहयोग करना।

इस मनुष्य जीवन में धन संपत्ति इत्यादि समस्त भौतिक संसाधनों की प्राप्ति होना आसान है लेकिन सम्यकज्ञान की प्राप्ति होना अत्यंत कठिन / दुष्कर है। वर्तमान समय में भारतीय परंपरा के ज्ञानी, संतो, विद्वानों द्वारा लिखे गये जो ग्रंथ हैं वे सम्यकज्ञान की प्राप्ति में सबसे बड़े सहायक हैं। सूर्य, चंद्र, बिजली के बड़े-बड़े प्रकाश के साथ मात्र बाहरी अंधकार को दूर कर सकते हैं लेकिन हमारे मन का अज्ञान रूपी अंधकार तो मात्र ग्रंथों के स्वाध्याय से ही दूर हो सकता है। हमारे मनीषी, संत, विद्वानों ने बहुआयामी दूर दृष्टि रखते हुए इन्हें व्यापक पैमाने पर साहित्य का सृजन किया है कि संपूर्ण विश्व के इतिहास में इसके बराबर कोई दूसरी मिसाल नहीं है। ऐसी अपूर्व श्रेष्ठ / महान् / उत्कृष्ट / परिष्कृत / परिमार्जित बौद्धिक विरासत का हम सभी तन, मन, धन, समय, त्रम, आस्था, निष्ठा के साथ प्रचार-प्रसार संरक्षण संवर्द्धन करके श्रुत की महान् परंपरा को गौरवशाली / समृद्धिशाली विकसित बनायें ताकि पूज्य कनकनंदीजी गुरुदेव का सपना साकार हो जाये।



मुनिश्री गुप्तिनंदीजी के आचार्य पद प्रदान समारोह (इन्दौर) में आ. श्री कनकनंदीजी के ग्रंथका विमोचन करते हुए राजा वहादुरसिंह कासलीवाल एवं श्री वावूलालजी पाटौदी

स्वयं जीव ही स्व विश्व का कर्ता-धर्ता-हर्ता (विश्व प्राकृतिक एवं शाश्वतिक)

प्रवेश द्वार

जब जिज्ञासाशील मानव स्वयं दशों दिशाओं में जीव-जन्तु, पशु-पक्षी, धनी-गरीब, ज्ञानी-अज्ञानी, रोगी-निरोगी, सज्जन-दुर्जन, पृथ्वी-सूर्य, चंद्र, ग्रह, नक्षत्र-आकाशगंगा, निहारिका आदि विचित्रपूर्ण चराचर, जड़-चेतन को देखता है, उसके बारे में सुनता है तो उनमें विभिन्न प्रश्न उत्पन्न होते हैं कि इन सबका निर्माता कौन है ? इसे परिचालित करने वाला कौन है ? इसे संहार करने वाला कौन है ? यह सब कब बने ? कैसे बने ? किससे बने ? मृत्यु के बाद जीव कहाँ जाते हैं ? मोक्ष के बाद क्या होता है ? क्या विश्व-ब्रह्माण्ड पहले नहीं था ? क्या इसका निर्माण केवल चैतन्य स्वरूप परम ब्रह्म से हुआ ? या अचेतन स्वरूप भौतिक द्रव्य (अणु-परमाणु, तप्त गैस पिण्ड आदि) से हुआ ? क्या निश्चित काल खण्ड में पृथ्वी आदि का क्रम विकास रूप निर्माण से हुआ और जीवों की उत्पत्ति तथा विकास हुआ ? क्या कभी सम्पूर्ण पृथ्वी के जीवों का विनाश हो जायेगा ? क्या सामान्य व्यक्ति तथा आधुनिक विज्ञान की धारणा / परिकल्पना / खोजें पूर्ण सत्य हैं ? इन सब प्रश्नों का सविस्तार वर्णन मैंने अपने ग्रंथ 'विश्व विज्ञान रहस्य' 'धर्म दर्शन एवं विज्ञान', 'स्वतन्त्रता के सूत्र', 'विश्व द्रव्य विज्ञान, सत्यसाम्यसुखामृतम्' आदि में दार्शनिक, गणितीय वैज्ञानिक, आध्यात्मिक दृष्टि से किया है; तथापि सामान्य व्यक्तियों के लिए इस कृति में संक्षिप्त वर्णन किया है। उपरोक्त ग्रंथों में तथा इस कृति में विस्तार से वर्णन किया गया है तथापि कुछ उपरोक्त प्रश्न सम्बन्धी समीक्षा यहाँ प्रस्तुत है-

(1) यदि सच्चिदानन्द स्वरूप परमब्रह्मा से संपूर्ण चराचर जगत् का निर्माण हुआ है तो जगत् की समस्त रचनायें / वस्तु / कृति सच्चिदानन्द स्वरूप परमब्रह्म ही होती। जैसाकि मिट्टी की समस्त रचनायें मिट्टीमय होती, सुवर्ण की सुवर्णमय तथा लोहा की लोहमय। परन्तु संसार में जड़, चेतन, मूर्तिक-अमूर्तिक, शुभ-अशुभ, पापात्मा-पुण्यात्मा, सुखी-दुखी आदि की उपलब्धि होती है ?

(2) यदि ब्रह्माण्ड का निर्माण केवल भौतिक वस्तु (परमाणु, गैस पिण्ड आदि) से हुआ है तब ब्रह्माण्ड में जो वनस्पति से लेकर मनुष्य तक चेतनयुक्त जीव

कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हर्ता ?!

उपलब्ध है वह कैसे संभव हो सकता है ? क्योंकि जड़ात्मक भौतिक निर्जीव द्रव्य से चेतनात्मक द्रव्य का निर्माण या क्रम विकास नहीं हो सकता है ।

(3) यदि पहले ब्रह्माण्ड नहीं था और ईश्वर ने निर्माण किया तो ईश्वर कहाँ और कब से था ? ब्रह्माण्ड के अनंत सूर्य, चंद्र, ग्रह, नक्षत्र, पशु-पक्षी, जीव-जन्तु, मनुष्य को निर्माण करने योग्य तत्व (कच्चा माल) कहाँ था ? कबसे था ? यदि ईश्वर पहले से (अनादिसे) है तो अन्य सब पहले से होने में क्या दोष है ? यदि सूर्य आदि के मूल तत्व पहले से हैं तो सूर्य से लेकर जीव तक पहले से होने में क्या दोष है ?

(4) यदि सर्व शक्तिमान्, सर्वज्ञ, अन्तर्यामी, दयालु, न्यायशील ईश्वर ने समस्त जड़ चेतनात्मक संसार का निर्माण किया तो संसार में विषमता, संघर्ष, हिंसा, अभाव, हत्या, गरीबी, रोगी, शोषक-शोषित आदि दुःखपूर्ण, अन्यायपूर्ण, क्रूरता से युक्त कार्य क्यों पाये जाते हैं ? यदि माना जावे कि स्व-स्व कर्मानुसार जीव उन-2 अवस्थाओं को प्राप्त होते हैं तब प्रश्न उत्पन्न होता है कि जब पहली बार ईश्वर ने जीवों को उत्पन्न किया था तो उस समय में क्या समस्त जीवों को पवित्र बनाया था या अपवित्र ? यदि पवित्र बनाया था तो वे अपवित्र कैसे बने ? जिससे वे सब उस पापकर्म के कारण दुःखी बनें ? यदि पहले सभी को अपवित्र बनाया था तो ऐसे पवित्र ईश्वर ने अपवित्र जीवों को क्या पवित्र भाव से बनाया या अपवित्र भाव से बनाया ? पवित्र ईश्वर में अपवित्र भाव क्यों ? और कैसे तथा कब आया ? दूसरों के भावों में अपवित्रता उत्पन्न कराके क्या ईश्वर ने अपने महान् गुणों के विपरीत कार्य नहीं किया ? दूसरों के भावों में अपवित्रता जगाकर उनसे पाप करवाकर उन्हें दुःख देना या दुःख भोगने के लिए कारण बनाना क्या यह ईश्वरीय महान् गुणों के योग्य है ? (क्योंकि ईश्वर कर्तावाद में ईश्वर की इच्छा से ही सब कुछ होता है) यदि ईश्वर समस्त ब्रह्माण्ड को प्रथमतः ही पवित्र, विषमता रहित, सुखमय बनाता तो उससे क्या हानि होती ? क्या ऐसा बनाना ईश्वर की शक्ति के बाहर का काम था ? यदि ऐसा है तो ईश्वर सर्वशक्तिमान् तथा दयालु कैसे हो सकते हैं ? क्या दूसरों के दुःख देखकर ईश्वर को अच्छा लगता है ? आनंद अनुभव होता है ? उनके क्रीड़ाभाव को सन्तुष्टि मिलती है ? संसार को दुःखमय बनाने से क्या ईश्वर को या संसार के दुःखी प्राणियों को कोई लाभ है ? यदि कहा जावे कि संसार में दुःख नहीं तो जो ऋषि-मुनि,

कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हर्ता ?!

संत, धर्म प्रचारक पहले से कह रहे हैं और ग्रन्थों में लिखे हैं तथा अनुभव में आता है कि संसार के प्राणी किसी ना किसी रूप से दुःख का अनुभव करते हैं जब तक कि कर्म बंधन से मुक्त नहीं हो जाते हैं तो यह सब क्या मिथ्या है ? यदि माना जावे कि शिक्षा देने के लिए ईश्वर दुःख देते हैं तो दयालु सर्वशक्तिमान ईश्वर दुःख देकर शिक्षा क्यों देते हैं ? सुख देकर शिक्षा क्यों नहीं दे पाते हैं ? दुःख देकर शिक्षा देने पर क्या उसकी दयालुता के कारण उन्हें दुःख नहीं होता है या दयालुता में दोष नहीं लगता है ? यदि माना जावे कि नहीं दुःख देकर ही शिक्षा दे पाते हैं – तो उनके सर्वशक्तिमानपने में दोष लगता है क्योंकि जो सर्व शक्तिवान् होगा तो वह समस्त प्रकार से काम कर सकता है । इससे सिद्ध होता है कि कोई सर्वशक्तिमान, दयालु, सर्वज्ञ, आनंदमय, अन्तर्यामी ईश्वर द्वारा यह विश्व तथा विश्व के प्राणी निर्मित नहीं हैं । यदि ऐसा होता तो समस्त विश्व तथा विश्व के प्राणी सब व्यवस्थित, सच्चिदानन्दमय, दयालु, ज्ञानी, विषमता / समस्याओं से रहित होते परन्तु विश्व तथा विश्व के प्राणी इससे विपरीत भूकम्प, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, बाढ़, अकाल, विध्वंश, युद्ध, कलह, अशांतमय, समस्यापूर्ण, दुःखी, रोगी, संत्रस्त, भयभीत, परस्पर को कष्ट देनेवाले पाये जाते हैं । यदि ईश्वर ने ही समस्त जीवों को बनाया है और उनकी इच्छा / प्रेरणा से ही सब कुछ होता है तो वे प्राणियों को परस्पर में क्यों लड़ते हैं ? दुःख देते हैं ? चोरी, दग्गाबाजी, डकैती, हत्या, बलात्कार, युद्ध आदि करवाते हैं ? क्या वे चोर को चोरी करने के लिए कहते हैं ? प्रेरित करते हैं और मालिक को जगाने के लिए / रक्षा / विरोध करने के लिए कहते हैं ? ऐसा विरोधात्मक कार्य करके वे स्व-पर को क्या लाभ पहुँचाते हैं ? क्या शिक्षा देते हैं ? क्या आदर्श प्रस्तुत करते हैं ? इससे विपरीत सत्य, सद्बुद्धि, समशक्ति, समसुख, समाधान से सम्पन्न कराके सबको सुखी क्यों नहीं बनाते ?

(5) ईश्वर ही सबकुछ कर्ता है मानने पर दुःख, हानि, रोग, युद्ध, कलह, बलात्कार, अन्याय, अत्याचार, भ्रष्टाचार आदि को भी ईश्वर की इच्छा / कृति मानकर उसे उचित मानना पड़ेगा और दूर करने का पुरुषार्थ नहीं होगा तथा पुरुषार्थ करने पर भी कुछ भी दूर / परिवर्तन / कमी नहीं हो सकेगा क्योंकि सर्वशक्तिमान् ईश्वर की इच्छा का परिवर्तन कैसे और कौन कर सकता है ? जो करेगा वह ईश्वरीय दण्ड / कोप का भागी भी बनेगा तब तो सेवा करने वाले,

कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हर्ता ?!

औषधिदाता, धर्म-शांति, नीति, सदाचार के उपदेशक न्यायकर्ता, अभयदाता सब ईश्वरीय विधान के विरोधी होंगे तथा ईश्वर के घोर शत्रु होंगे परन्तु इन्हें ईश्वर का भक्त/धार्मिक माना जाता है। युद्ध, चोरी आदि करने वाले ईश्वर के सेवक, भक्त, आज्ञाकारी सिद्ध होंगे। क्योंकि इन युद्ध आदि की इच्छा / प्रेरणा / सृष्टि तो ईश्वर करता है और उनकी इच्छानुसार चोर आदि उस कार्य को करके ईश्वर की इच्छा की पूर्ति करते हैं परन्तु इन्हें पापी / अधार्मिक / ईश्वर द्वारा माना जाता है।

(6) ईश्वर कर्तवाद के संपूर्ण दोष 'विश्व तथा जीवों के प्राकृतिक, शाश्वतिक, परिवर्तनशील तथा स्व-स्व कर्म सिद्धांतों में नहीं है। विश्व प्राकृतिक रूप से जड़ चेतनात्मक द्रव्य से अनादि से अनन्त तक सतत परिवर्तनशील रूप में रहेगा। संसार के प्रत्येक प्राणी स्व-स्व भाग्य तथा पुरुषार्थ से दुःख-सुख अनुभव करते हैं। आध्यात्मिक साधना के बल पर समस्त कर्मों को नष्ट करके सच्चिदानन्द स्वरूप बन जाते हैं। इसके बाद वे संसार के किसी भी कार्य में प्रवृत्त नहीं होते हैं। इसका विस्तृत वर्णन मैंने "कर्म का दार्शनिक वैज्ञानिक विश्लेषण", "पुण्य पाप मीमांसा" "भाग्य एवं पुरुषार्थ" आदि में किया है। विशेष जिज्ञासुओं के लिए अध्ययन योग्य है। इस कृति में भी सामान्य वर्णन किया गया है।

(7) वस्तुनिष्ठ वैज्ञानिक दृष्टि से विश्व तथा समस्त प्राणी प्राकृतिक तथा शाश्वतिक होने पर भी समच्चयात्मक, उदार, अनेकान्तात्मक दृष्टि से कथंचित् कर्तवाद भी सत्य है। जिसका दिग्दर्शन निमानुसार है— एक सम्प्रदाय कहता है कि जगत् कर्ता ईश्वर है तो दूसरा कहता है कि जगत् कर्ता ईश्वर नहीं है। निःसंदेह इन दोनों में से कोई एक असत्य है परन्तु समझने की बात यह है कि इन दोनों वादों का लक्ष्य क्या है? ईश्वर कर्तृत्ववादी कहता है कि यदि तुम पाप करोगे तो वह प्रसन्न होगा, सुख देगा, स्वर्ग में भेजेगा। ईश्वर कर्तृत्व का विरोध करने वाले जैन आदि कहते हैं कि यदि तुम पाप करोगे तो अशुभ का बंध होगा, खाए हुए अपथ्य भोजन की भाँति इसका (अशुभ कर्म का) दुःख रूप तुम्हें मिलेगा, तुम्हें दुर्गति में जाना पड़ेगा; परन्तु यदि तुम पुण्य करोगे तो तुम्हें शुभ-पुण्य कर्म का उपार्जन होगा, खाये हुए पथ्य भोजन की तरह (शुभ कर्म) तुम्हें सुखदायी होगा। एक धर्म, संप्रदाय मनुष्यों को ईश्वर कर्तृत्ववादी बनाकर जो काम करना चाहता है वही काम दूसरा धर्म, संप्रदाय उन्हें ईश्वर कर्तृत्व मत का विरोधी बनाकर

कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हर्ता ?!

करना चाहता है। इसमें देखना तो यह चाहिए कि धर्ममें (धर्म के मुद्रे में) भिन्नता तो आयी नहीं। अच्छे काम का अच्छा और बुरे काम का बुरा परिणाम मिलने के बारे में सभी का एकमत ही है तब भिन्नता फल की मार्ग सरणी की विचारणा में आयी। यह भिन्नता ऐसे विशेष महत्व को क्यों गिनी जानी चाहिए कि विरोध जनक के रूप में परिणत हो? विरोध तो वहाँ हो सकता है जहाँ दोनों का उद्देश्य एक नहीं है। ईश्वर कर्तृत्ववादी को यदि वैज्ञानिक दृष्टि से अतथ्य माने तो भी वह अधर्म (अधर्म प्रेरक) तो नहीं कहा जा सकता। बुद्धि की अपेक्षा जिनकी भावुकता सविशेष है उन्हें ईश्वर कर्तृत्ववाद अधिक प्रिय और उपयोगी लगता है। वे ऐसा विचारने लगते हैं कि ईश्वर के भरोसे सब कुछ छोड़ देने से निश्चन्त हुआ जा सकता है। इसके फलस्वरूप कर्तृत्व का अहंकार उत्पन्न नहीं होता और पुण्य पाप का विचार सतत बना रहता है। अधिक बुद्धिमान गिने जाने वाले लोग ईश्वर कर्तृत्व तर्क सिद्ध न होने से उसे नहीं मानते। वे ऐसा मानते हैं कि ईश्वर को कर्ता न मानकर स्वावलम्बी बनना और आत्म बल एवं निज पुरुषार्थ को विकसित करने में जागृत रहना आवश्यक है। ईश्वर को प्रसन्न करने की भोली भक्ति और प्रयास करने के बदले कर्तव्य साधना में प्रगतिशील बनने के लिए प्रयत्नशील होना ही अधिक श्रेयस्कर है। उनका ऐसा मंतव्य है कि हमारे पापों को क्षमा करने वाला कोई नहीं है अतः हमें स्वयं पापाचरण से डरते रहना चाहिए। इस पर से हम स्पष्ट देख सकते हैं कि जो ईश्वर कर्तृत्व को मानते हैं वे उसे इसीलिए मानते हैं कि मनुष्य पाप न करे और जो भी ईश्वर कर्तृत्व को नहीं मानते उनकी मान्यता का सार भी यही है कि मनुष्य पाप ना करे। दोनों का लक्ष्य एक है। प्राणी सदाचारी बनकर सुखी हो यही दोनों का उद्देश्य है।

अनेकांत के बारे में— "अनेकांतभूति नाम की द्वाग्रंशिका" में से कुछ श्लोक मैं यहाँ पर उद्धृत करता हूँ।

द्वैताद्वैतवाद-

द्वैतं यथार्थं जड़ चेतनाभ्यामद्वैतमप्यात्मतिका सदृष्ट्या
इत्यं द्वयं तत् पटु संगमय्य शान्तस्त्वयातारक! तद्विरोधः

जगत् जड़ और चेतन इस प्रकार दो तत्वरूप होने से द्वैतवाद यथार्थ है। इसीप्रकार आराध्य तत्व एकमात्र आत्मतत्व होने से उसकी (आत्मा के) विकास साधन की दृष्टि से (उसकी विकास साधन पर भार देने के लिए) अद्वैतवाद

कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हता ?!

का निर्देश भी यथार्थ है। इस तरह इन दोनों की कुशल संगति करके हैं तारक प्रभो ! तुमने इनका विरोध शांत कर दिया है।

एकात्मवादी—

एकात्मवादोऽहि समात्ववाद स सर्वभूतैः समभाववादः।

इत्थं सुधीभवियति श्रितोऽपि नानात्मवादं परमार्थं सिद्धम् ॥

एकात्मवाद का हमें तनिक भी विरोध नहीं है परंतु आत्मा व्यक्तिशः नाना होने से एकान्तवाद का अर्थ समानतावाद करना उचित है। (समानतावाद) यानि सब आत्मा मूलरूप से एक ही सरीखे स्वरूप हैं ऐसा सिद्धान्त यह वाद सब प्राणियों के साथ समभाव स्थापित करने का पाठ सिखाता है। बुद्धिशाली पुरुष अनेकान्तवाद का (जीव भिन्न-भिन्न हैं इस तत्व का) सिद्धान्त, जो कि यथार्थ है इसका अनुगामी होने पर भी, ऊपर कहा उस तरह एकात्मवाद की भावना को पुष्ट करता है।

अवतारवाद —

मुक्तस्य भूयो न भवावतारो मुक्तिव्यवस्था न भवावतारे।

उत्कृष्ट जन्माते उदार काये महावतारा उदिता महान्तः ॥

मुक्ति की प्राप्ति के पश्चात् मुक्त आत्मा का पुनः संसार में अवतरण नहीं होता। संसार में उसका यदि पुनः अवतरण माना जाये तो मुक्ति की व्यवस्था ही नहीं रहेगी। अतः इस तरह का अवतारवाद युक्ति युक्त नहीं है। महान् पुरुषों का जन्म महान् कार्य करने से महान् समझा जाता है और इसीलिए 'अवतार' का अर्थ जन्म होने से वे 'अवतारी' अथवा महान् अवतारी समझे जाते हैं।

कर्तृत्ववाद—

सोपाधिरात्मा जगति प्रवृतोऽनुपाधिरात्मा न वहेदुपाधिम् ।

एव हि कर्त्तव्यमतकर्तृतां चाश्रित्योद्भवन्तः कलहाव्येपयुः ॥

उपाधियुक्त आत्मा जगत् में प्रवृत्ति करता है और उपाधिमुक्त शुद्ध (सच्चिदानन्द) आत्मा को / परम आत्मा को उपाधि उठानी नहीं पड़ती। इस प्रकार कर्तृत्व और कर्तृत्ववाद के कारण होने वाले कलह शांत हो जाते हैं।

साकार-निराकार वाद—

साकारभावे सशीरतायां निरांकृतित्वे च विदेहतायाम् ।

सङ्गच्छमाने परमेश्वरस्य विरोधभावोऽनवकाश एव ॥

कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हता ?!

परमात्मा की शरीर धारी अवस्था में साकारता और विदेह अवस्था में निराकारता इस तरह दोनों संगत होने से इनमें विरोध के लिए अवकाश नहीं है।

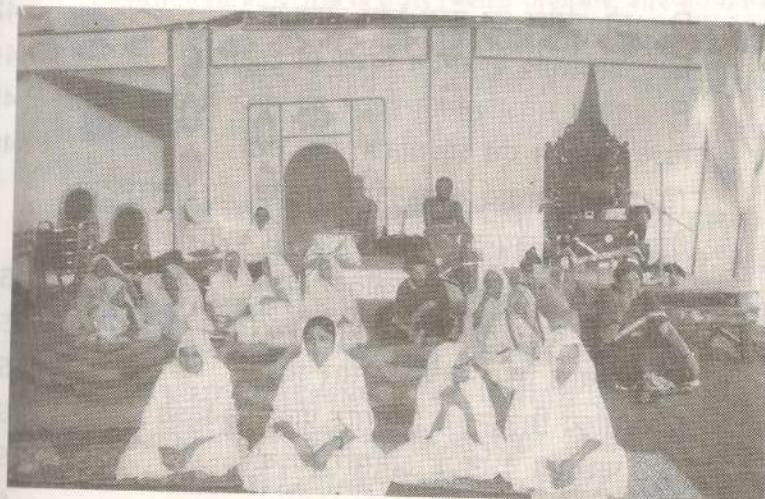
मैंने जो इस कृति में विश्व को प्राकृतिक तथा शाश्वतिक सिद्ध किया है यह वस्तु स्वरूप का कथन है। इसमें मेरा किसी भी धर्म / संप्रदाय / परंपरा / मान्यता के प्रति धृणा / द्वेष भाव नहीं है। परन्तु प्रज्ञाशील / सत्यशोधक वास्तविक सत्यको जाने-माने-पहिचाने तथा स्वात्मबल से स्वावलम्बी बनकर आत्मसाधना के बल पर 'सच्चिदानन्द स्वरूप' 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' बने इस महती / शुभ / उदात्त भावना के कारण किया है। विश्वके संपूर्ण प्राणी विश्वज्ञाता, विश्वात्मा, परमब्रह्म स्वरूप शुद्धात्म-सिद्धात्मा बने ऐसी भावना के साथ।

आ. कनकनंदी

गींगला (उदयपुर) राज.

14-8-2001

आदर्श पंचकल्याणक (दिवारी) में वैज्ञानिकाचार्यश्री कनकनंदीजी गुरुदेव संसं



अनुक्रमणिका

अध्याय

	पृ.सं.
1 जीव स्व-विश्व का कर्ता-धर्ता (भोक्ता) हर्ता	1
A जीव का विश्व-रूप	4
B जीव का स्वरूप	4
C कर्ता के विभिन्न रूप	15
D भोक्ता के विभिन्न रूप	20
E जीव के छोटे-बड़े शरीर में व्याप्त होने का कारण (जीव का प्रदेशत्व स्वभाव)	21
2 विश्व अकृत्रिम, शाश्वतिक : वैज्ञानिक समीक्षा	26
3 महापुराण में वर्णित प्राकृतिक, शाश्वतिक विश्व	40
A लोक (विश्व) की परिभाषा	40
B विश्व अकृत्रिम, अविनाशी	40
C सृष्टि कर्ता मानने से दोष	40
D स्व-संसार का कर्ता स्वयं जीवात्मा	43
E आकाशादि के समान विश्व भी अकृत्रिम	44
F दयालु सर्वशक्तिमान ईश्वर की सृष्टि में दुःख क्यों ?	45
4 विश्व अकृत्रिम एवं शाश्वतिक: एक चर्चा (वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनंदीजी गुरुदेव की अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक डॉ. जयन्त विष्णु नार्लीकर से वार्ता)	46
5 विभिन्न दर्शन में वर्णित प्राकृतिक विश्व	53
A बौद्ध दर्शन के अनुसार प्राकृतिक विश्व	53
B चार्वाक सिद्धान्त के अनुसार विश्व	55
C सांख्य सिद्धान्त के अनुसार प्राकृतिक विश्व	56
D पाश्चात्य दर्शन के अनुसार विश्व	58
E स्वभाववाद	59
F विश्व का कोई एक कर्ता नहीं होने से लाभ	61

1 जीव स्व-विश्व का कर्ता-धर्ता (भोक्ता) हर्ता

लोकोऽयं नात्यशाला रचित सुरचना, प्रेक्षको विश्वनाथो ।
जीवोऽयं नृत्यकारी विविध तनुधरो नाटकाचार्य कर्मः ।
तरमाद्रक्तं च पीतं हरितं सुधवलं कृष्णमेवात्र वर्णः ।
धृत्या स्थूलं च सूक्ष्मं नटति सुनठवत् नीचकौच्चै कुलेषु ॥

यह विश्व विशाल प्राकृतिक रंगमंच है। इसकी रचना अत्यंत वैचित्र्यपूर्ण एवं सुव्यवस्थित है। इसका प्रेक्षक (दर्शक) अनंत-ज्ञानी विश्व द्रष्टा भगवान् है। इस रंगमंच के नृत्यकारी (कलाकार) विभिन्न शरीर रूप, बहुरूप को धारण करने वाले जीव हैं। इस रंगमंच का नाटकाचार्य कर्म है। संसारी जीव रूपी नट, लाल, पीले, हरे, सफेद, कृष्ण वर्ण तथा भीम काय एवं सूक्ष्म काय शरीर को धारण करके ऊँच एवं नीच गोत्र में अभिनय कर रहा है।

जिस प्रकार विभिन्न सजावट से सुसज्जित रंगमंच पर विभिन्न रूप को धारण करने वाले नट एवं नटी नाटकाचार्य के निर्देशानुसार दर्शक के सामने विभिन्न अभिनय प्रस्तुत करते हैं, उसी प्रकार इस विशाल अकृत्रिम, शाश्वतिक विश्वरूपी रंगमंच में यह संसारी जीव कर्म के निर्देशानुसार विभिन्न रूप को धारण करके, 84 लाख योनियों में अपना वैभाविक अभिनय करते हैं। वीतराग सर्वज्ञ भगवान्, ज्ञाता-दृष्टा रूप से संसारी जीव के उस अभिनय को साक्षी रूप से देखते हैं, जानते हैं।

उपरोक्त श्लोक में कवि ने आलंकारिक भाषा में संसार का कारण, संसारी जीव और संसार से उपरिम जीवों का भाव पूर्ण नाटकीय पञ्चति से वर्णन किया है। रंगमंच में अभिनयकारी कभी राजा, कभी रंक, कभी पापात्मा तथा कभी धर्मात्मा का अभिनय करता है, परन्तु वह वास्तविक स्वरूप नहीं है, वह तो एक स्वांग है। इसी प्रकार इस विश्वरूपी रंगमंच में संसारी जीव रूपी अभिनयकारी कभी नर, तो कभी नारी, तो कभी नारकी, कभी पशु, तो कभी पक्षी, कभी देवता, तो कभी दानव का रूप लेकर संसार में अभिनय कर रहे हैं। यह रूप स्वं अभिनय भी सत्य नहीं है परन्तु स्वांग स्वरूप है, क्योंकि जीव का सच्चा स्वरूप तो विश्व द्रष्टा भगवान् स्वरूप है। संसारी जीव तो कर्म से प्रेरित होकर विभिन्न संसाररूप

कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हर्ता ?!

स्वांग को धारण करते हुए यह विश्वरूपी रंगमंच पर अभिनय कर रहा है। जब तक इस स्वांग को ही अपना रवरूप जानता हुआ, मानता हुआ, आचरण करता रहेगा तब तक वह कभी भी इस अभिनय से उपरिम नहीं होगा और तब तक वह विश्व दृष्टा स्वरूप भगवान् नहीं बन सकता। इस संसार से निवृत होने के उपाय यह हैं कि स्व-स्वरूप के साथ-साथ संसार का स्वरूप भी जानकर और संसार स्वरूप को त्याग कर एवं स्व-स्वरूप में रिथर हो जावें, परन्तु यह जीव अनादि-कालीन कर्म से संस्कारित होकर, स्वरूप से च्युत होकर विभिन्न स्वांग को धारण करके संसार में अभिनय कर रहा है।

किनहूँ न करौं न धरे को, षट्द्रव्यमयी न हरै को।

सो लोकमांहि बिन समता, दुःख सहै जीव नित भमता ॥

इस शाश्वतिक, प्राकृतिक षट् द्रव्यमयी विश्व में यह मूढ़ प्राणी वीतरागमय शांत रूप से रहित होकर विभिन्न दुःखों को सहता हुआ सतत् परिभ्रमण कर रहा है। यह विश्व भौतिक, आध्यात्मिक आदि भेद से अनेक प्रकार का है। भौतिक दृष्टिकोण से इस विश्व के चार भेद हैं— (1) अधोलोक (2) मध्यलोक (3) ऊर्ध्वलोक (4) सिद्धलोक। इसी प्रकार आध्यात्मिक दृष्टिकोण से चार प्रकार का है— (1) पाप (नरक, तिर्यज्च) (2) पुण्यपाप (मनुष्य) (3) पुण्य (देव) (4) पुण्यपापातीत (शुद्ध आत्मलोक अर्थात् सिद्ध)।

प्रसिद्ध सूक्ति है कि ‘जो पिण्डे सो ब्रह्माण्डे’ अर्थात् जैसा विचार वैसा संसार, जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि, जैसी मति वैसी गति। भावानुसार कर्म संचय होता है और कर्मानुसार संसार में विभिन्न गति को प्राप्त करके जीव विभिन्न क्षेत्रों में उत्पन्न होता है।

न्यूटन के तृतीय गति सिद्धान्त से भी क्रिया-प्रतिक्रिया सिद्ध होता है— “To every action, there is an equal and opposite reaction.”

अर्थात् जहाँ क्रिया है वहाँ पर उसकी प्रतिक्रिया उस क्रिया की विपरीत समानुपाती क्रिया होती है।

इसी प्रकार जिस जीव में जिस प्रकार भावात्मक क्रिया होती है, उस जीव में भावात्मक समानुपाती विपरीत क्रिया होती है। दूषित पापात्मक भाव क्रिया होने पर उसकी विपरीत समानुपाती प्रतिक्रिया अर्थात्, नरक, तिर्यज्च रूपी गति की उपलब्धि होती है। प्रशस्त पुण्यात्मक भावात्मक क्रिया के प्रति फल स्वरूप देवगति

कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हर्ता ?!

की उपलब्धि होती है। परिशुद्ध पुण्य-पाप से रहित भावात्मक क्रिया होने पर उसकी प्रतिक्रिया फलस्वरूप सिद्ध गति की उपलब्धि होती है। यही वैज्ञानिक भावात्मक क्रिया-प्रतिक्रियात्मक विश्व का मूलभूत सिद्धान्त है।

पावेण णिरिय तिरिय गुम्मई धम्मेण देव तोयं तु ।

मिष्ट्सेण माणसतं दोणणंपि खयेण णिक्वाणं ॥

पाप कर्म से नरक- तिर्यज्च गति, पुण्य से देव गति, पुण्य-पाप मिश्रण से मनुष्य गति एवं पुण्य पाप दोनों के क्षय से पंचम गति- सिद्ध गति प्राप्त होती है। द्रव्य कर्म साक्षात् पुद्गल होने से जड़ पर द्रव्य है। परन्तु द्रव्य कर्म रूपी पुद्गल से उत्पन्न राग- द्वेष, मोह, कामादिक भाव भी एक अपेक्षा से पौद्गलिक हैं। कर्म से प्रेरित होकर जीव का संसार में विभिन्न प्रकार के अभिनय करने के कारण यह विश्व रूपी रंगमंच में आध्यात्मिक दृष्टि से जड़ भौतिक वस्तु ही नृत्य करती है, भगवान् आत्मा नहीं, क्योंकि शुद्ध आध्यात्मिक दृष्टि से भगवान् आत्मा का स्वभाव साक्षी स्वरूप, दर्शक स्वरूप ज्ञाता दृष्टा है। आध्यात्मिक रसिक आचार्य अमृतचन्द्र सूरि, अध्यात्म अमृत कलश में नाटकीय पञ्चति से बहुत ही सुन्दर आलंकारिक भाव से निम्न प्रकार बताते हैं—

अरिमन्ननादिनि महव्यविवेक नाव्ये

वणादिमान्नयति पुद्गल एव नाव्यः ।

रागादि पुद्गल विकार विरुद्ध शुद्ध

चैतन्य धातुमय मूर्तिरयं च जीवः ॥

इसी विश्व रूपी रंगमंच में अभिनीत अनादि महान् अविवेकपूर्ण नाटक में वर्णादि युक्त पुद्गल ही अभिनय कर रहे हैं, अन्य कोई नहीं। शुद्ध जीव तो पौद्गलिक विकार, रागादि वैभाविक विरुद्ध भावों से रहित शुद्ध चैतन्य धातुमय पूर्ति है।

द्रव्य सृष्टि से स्वभावतः प्रत्येक जीव विज्ञान-घन-स्वरूप साक्षी-स्वरूप विश्व दृष्टा होते हुए भी मोह, अज्ञान, ममत्व आदि भावों के कारण पौद्गलिक धर्म को अपनाते हुए संसार में परिभ्रमण कर रहा है तो भी बाह्य स्वांग (नर, नारकादि) अथवा अंतरंग स्वांग की भावनाएँ (मोह, रागादि) अपनी नहीं हो सकती हैं। केवल व्यय को शुद्ध-बुद्ध विश्व का ज्ञाता द्रष्टा भाव ही अपना हो सकता है। अमृतचन्द्र गरि ने कहा भी है—

कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हर्ता ?!

त्यजतु जगदिदार्नीं मोहमाजन्मलीढं ,
रसयतु रसिकानां रोचनं ज्ञानमुद्यत् ।
इह कथमपि नात्मानात्मना साकमेकः ,
किल कलयति काले व्यापि तदात्म्य वृतिम् ॥

हे अखिल विश्व के सुख इच्छुक दुःखी प्राणी ! जन्म से (अनादि से) संशिलष्ट मोह का अभी त्याग करो। हे ज्ञानानंद ! रसिक प्रकाशमान ज्ञान में रमण करो। ज्ञान तुम्हारा आत्मस्वरूप है। मोह, अनात्मा संसार का स्वरूप है। तुम्हारी आत्मा कभी भी किसी भी तरह से अनात्मा स्वरूप नहीं हो सकती है। अखिल विश्व के सम्पूर्ण उत्थान—पतन, हानि—लाभ, सुख—दुःख आदि आत्मा का स्वभाव नहीं है। परन्तु अज्ञानी मोही जीव संसार की समस्त गतिविधियों को स्वयं गतिविधि मानकर अनादि आवहमान अनंत काल से अनंत वैचित्र्य पूर्ण यातनाओं को सहन कर रहा है। परन्तु यदि वह दृढ़ निष्ठा व पुरुषार्थ से स्वयं को विश्व से पृथक् करके स्वयं में स्थिर हो जायेगा तो स्वयं के लिए सम्पूर्ण विश्व प्रपञ्च नष्ट हो जायेगा एवं स्वयं की उपलब्धि हो जायेगी।

जीव का विश्व—रूप

(जीव के नौ विशेष गुण)

जीवो उवओगमओ अमुति कत्ता सदेह परिमाणो ।

भोक्ता संसारत्थो सिद्धो सो विस्ससोऽङ्गर्गी ॥(2)

जो जीता है, उपयोगमय है, अमूर्त है, कर्ता है, निज शरीर के बराबर है, भोक्ता है, संसार में स्थित है, सिद्ध है और स्वभाव से ऊर्ध्वगमन करने वाला है, वह जीव है।

छहों द्रव्यों में से जीव द्रव्य सर्वत्रेष्ठ एवं उपादेय द्रव्य होने के कारण तथा प्रथम गाथा में जीव द्रव्य का प्रथम निर्देश होने से इस गाथा में आचार्य श्री ने जीव द्रव्य के नौ विशेष गुणों के नाम निर्देशपूर्वक नौ अधिकारों का संक्षेप में दिग्दर्शन किया है। स्वयं आचार्यश्रीने नौ अधिकारों का विशेष वर्णन अग्रिम गाथासूत्र में किया है इसलिए यहां केवल सामान्य जानकारी के लिए नौ अधिकारों का संक्षिप्त वर्णन निम्न प्रकार से कर रहे हैं—

(1) जीव — जो शुद्ध निश्चय नय से चैतन्य रूप भाव प्राण से जीता है एवं

कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हर्ता ?!

व्यवहार से अशुद्ध जो द्रव्य प्राण एवं भाव प्राण से जीता है उसे जीव कहते हैं।

(2) उपयोगमय — शुद्ध द्रव्यार्थिक नय से सम्पूर्ण निर्मल केवलज्ञान एवं केवल दर्शन रूप उपयोग से सहित है एवं व्यवहार नय से क्षायोपशमिक ज्ञान एवम् दर्शन से युक्त है उसे उपयोगमय कहते हैं।

(3) अमूर्तिक —संसारी जीव व्यवहार नय से मूर्तिक कर्मों से युक्त होने के कारण मूर्तिक होते हुए भी निश्चय नय से जीव कर्म निरपेक्ष है इसलिए अमूर्तिक है।

(4) कर्ता — शुद्ध नय से जीव, कर्म का कर्ता नहीं है तथापि व्यवहार नय से जीव योग एवम् उपयोग से कर्मों का आस्रव एवं बंध करता है इसलिए कर्ता भी है।

(5) स्वदेह परिमाण — निश्चय नय से जीव, लोकाकाश के बराबर असंख्यात प्रदेशी होते हुए भी शरीर नाम कर्म के उदय से उत्पन्न संकोच तथा विस्तार के कारण जीव संसारी अवस्था में जिस शरीर को प्राप्त करता है उस शरीर के बराबर हो जाता है।

(6) भोक्ता — शुद्ध निश्चय नय से जीव स्व अनंत सुख को भोगता है तथापि अशुद्ध नय से कर्म परतंत्र जीव, शुभ कर्म से उत्पन्न शुभ एवं अशुभ कर्म से उत्पन्न अशुभ कर्मों को भी भोगता है।

(7) संसार में स्थित — यद्यपि जीव शुद्ध निश्चय नय से संसार से रहित है तथापि अशुद्ध नय से द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भव रूपी पंचविधि संसार में रहता है।

(8) सिद्ध — यद्यपि जीव अनादि काल से कर्म से युक्त होने के कारण असिद्ध है तथापि शुद्ध निश्चय नय से कर्म से रहित होने के कारण सिद्ध है।

(9) स्वभाव से ऊर्ध्वगमन करने वाला— यद्यपि कर्म परतंत्र जीव संसार में ऊंचा, नीचा, सीधा, तिरछा गमन करता है तथापि निश्चय नय से स्वभाव रूप से इसमें ऊर्ध्वगमन शक्ति है इसलिए जीव मोक्षगमन के समय ऊर्ध्वगमन ही करता है।

उपर्युक्त गुणों से युक्त प्रत्येक जीव होता है। कुछ दार्शनिक उनमें से कुछ गुण को तो मानते हैं और कुछ गुणों को नहीं मानते जैसे— चार्वाक आदि भौतिक जड़वादी दार्शनिक चैतन्य से युक्त शाश्वतिक जीव द्रव्य को नहीं मानते हैं। नैयायिक दर्शन में मुक्त जीव को ज्ञान, दर्शन से रहित मानते हैं, भट्ट तथा चार्वाक दर्शन जीव को मूर्तिक मानते हैं। सांख्य दार्शनिक आत्मा (पुरुष) को कर्ता नहीं मानता

कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हता ?!

है। नैयायिक, मीमांसक और सांख्य दर्शन आत्मा को प्राप्त शरीर प्रमाण न मानकर आत्मा को हृदय कमल में स्थित वट बीज आदि के बराबर मानते हैं। बौद्ध दर्शन क्षणिक वादी होने के कारण इस दर्शन की अपेक्षा जीव स्वपूर्वोपर्जित कर्म का भोक्ता है यह सिद्ध नहीं होता। सदाशिव मत वाले आत्मा को सदा सर्वदा मुक्त मानते हैं। भट्ट और चार्वाक दार्शनिक आत्मा को सिद्ध नहीं मानते हैं। उपर्युक्त दार्शनिक जीव को स्वाभाविक ऊर्ध्वगमन वाला नहीं मानते हैं। उपर्युक्त असम्यक् मतों को निरसन करने के लिए इस गाथा में जीव के उपरोक्त गुणों का वर्णन किया गया है।

जीव का रहस्य

तिक्काले चदुपाणा इंदियबलमाउआणपाणो य।

ववहारा सो जीवो णिछ्य णयदो दु चेदणा जस्स ॥(3)

तीन काल में इन्द्रिय, बल आयु और आन पान इन चारों प्राणों को जो धारण करता है वह व्यवहार नय से जीव है और निश्चय नय से जिसके चेतना है, वह जीव है।

आचार्यश्री ने इस गाथा में व्यवहार नय से एवं निश्चय नय से जीव की परिभाषा दी है। संसारी जीव अनादि काल से कर्म संतति की अपेक्षा कर्म से युक्त है। इसलिए कर्म परतंत्र जीव यथायोग्य कर्म के उदय से प्राप्त यथा योग्य द्रव्य प्राण एवं भाव प्राण से जीता है। इसलिए व्यवहार नय से चार द्रव्य प्राणों से और भाव प्राणों से जो जीता है, जीवेगा वा पहले जिया है उसे जीव कहते हैं; अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से द्रव्येन्द्रिय आदि द्रव्य प्राण हैं और भावेन्द्रिय आदि क्षायोपशमिक भाव प्राण अशुद्ध निश्चय नय से हैं तथा निश्चय नय से शुद्ध चैतन्य ज्ञान आदि शुद्ध भाव प्राण हैं।

प्रत्येक द्रव्य, 'पर' से उत्पन्न न होने वाला सत्तावान होने से प्रत्येक द्रव्य अनादि अनिधन अर्थात् शाश्वतिक है। विज्ञान के अनुसार भी द्रव्य एवम् ऊर्जा कभी भी नष्ट नहीं होते हैं परन्तु परिवर्तित होते रहते हैं। इसलिए प्रत्येक जीव अनादि से है और अनंत तक रहेगा भले उसमें सतत परिवर्तन होता है। डार्विन आदि कुछ आधुनिक वैज्ञानिक एवं चार्वाक आदि कुछ प्राचीन दार्शनिक जीव को शाश्वतिक नहीं मानते हैं परन्तु इनका यह मत कपोल कल्पित असत्य है। इसका विशेष वर्णन मैंने 'विश्व विज्ञान रहस्य' में किया है विशेष जिज्ञासु 'विश्व विज्ञान

कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हता ?!

रहस्य' का अध्ययन करें। जीव एक शाश्वतिक द्रव्य है, इसकी सिद्धि निम्न प्रकार से होती है।

वच्छरक्खर भवसारित्य सग्गणिरय पियराय ।
चूल्लिय हंडि य पुण मडउ णव दिट्ठंता जाय ॥
वत्स अक्षर भव सादृश्य स्वर्ग नरक पित्राराधः ।
चूल्लिस्थ हांडी पुनः मृतकः नव दृष्टांतः यावत् ॥

1. वत्स -

जन्म लेते ही बछड़ा बिना किसी के सिखाये अपने आप अपनी माता का स्तन पान करने लगता है। यहां मनोवैज्ञानिक पद्धति से जब विचार करते हैं, तब पता चलता है कि यह कार्य पूर्व भव के संस्कार के माध्यम से होता है। यदि जड़ से बनने वाला एक नृतन पर्याय जीव है तब जड़ से बननेवाले मेज, कुर्सी आदि भी अपने आप कार्य करने लगेंगे। जड़ात्मक जल से बननेवाला मेघ भी जीव के समान क्रिया करने लगेगा। इस पूर्व जन्म के सिद्धान्त को अब वैज्ञानिक लोग भी मानने लगे हैं। वैज्ञानिकों ने एक यन्त्र बनाया है, जिसमें कोई वस्तु बाहर नहीं जा सकती है। उसमें जन्म एवं मरण के समय में आत्मा में एक विद्युत् चक्र मालूम पड़ा। यह विद्युत् चक्र मृत्यु के बाद नहीं रहता है ऐसा मानते हैं। इसके शोध के लिए एक अन्य यन्त्र तैयार हो रहा है। यह विद्युत् चक्र अन्य कुछ नहीं हैं किन्तु जीव के साथ अनादि से संबंधित तैजस शरीर है। सर ओलिवर लाज (Sir Oliver Loz) मानते हैं कि आत्म तत्त्व निश्चित है। भारतीय वैज्ञानिक जगदीशचन्द्र बोस ने उच्च स्तरीय मनुष्यादि के समान ही निम्न त्रेणीय वृक्षादि को भी जीव माना है। विज्ञान से उसने सिद्ध किया है कि आत्मा, शरीर के अनुसार संकोच या विस्तार करता है।

2. अक्षर-

अक्षरों का उच्चारण जीव जानकारी के साथ आवश्यकतानुसार करता है। जड़ पदार्थ में इस प्रकार अनुभूति मूल शब्द उच्चारण की आश्यकता नहीं होती। कोई कह सकता है कि रेडियो-टेलीविजन भी तो शब्द उच्चारण करते हैं? किन्तु वे अनुभूति मूलक शब्द उच्चारण नहीं करते। जिस प्रकार जीव अपने भाव को स्वतः प्रवृत्त प्रकाशित करता है उसी प्रकार यंत्रादि नहीं करते हैं। प्रत्येक जीव में ज्ञान ग्रहण करने की शक्ति समान नहीं होती है। किसी व्यक्ति को बिना सिखाये

कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हता ?!

भी विशेष कला; ज्ञानादि हो जाता है। अन्य को सिखाने पर भी वह उसमें कृतकार्य नहीं हो पाता है। इसका कारण पूर्व भव का संस्कार—असंस्कार है। कोई प्रश्न कर सकता है कि मेघादि स्वतः प्रवृत्त गर्जना करते हैं किन्तु वह गर्जना अनुभूतिमूलक नहीं हैं। केवल पुद्गल स्कन्ध के घर्षण के माध्यम से उत्पन्न होने वाला शब्द, अनुभूति रहित जड़ शब्द है।

3. भव —

आत्मा यदि क्षणिकवाद के समान अस्थिर पदार्थ होता तब बुद्धदेव की पूर्व भव की जातक कथा ही कैसे सत्य होती ? यदि पुनर्भव नहीं होता तब परलोक के लिए सुकृत कार्य के आलम्बन का क्या प्रयोजन होता ? आत्मा यदि स्थिर नहीं होता तब कृत कार्य का भागी कौन होता ? ‘जीवन क्षण भंगुर है’ इस प्रकार का उपदेश देने वाले महात्मा बुद्ध ने कठोर चातुर्याम का स्वयं अनुकरण एवं उपदेश क्यों दिया ? इस प्रकार भव ग्रहण से सिद्ध होता है कि आत्मा शाश्वत अनादि निधन द्रव्य है। विज्ञान की अपेक्षा भी कोई वस्तु सर्वथा नष्ट नहीं होती है, तब विश्व के सर्वश्रेष्ठ आत्म वस्तु का मूल छेद कैसे हो जायेगा ?

4. सादृश्य—

प्रायः निम्न श्रेणीय ‘एककोशीय प्राणी— अमीबा’ से लेकर विश्व के सर्वश्रेष्ठ बुद्धजीवी— मनुष्य पर्यन्त, प्रत्येक प्राणी में आहार, भय, परिग्रह, मैथुन, हर्ष—विषाद, सुख—दुख आदि समान रूप से दृष्टिगोचर होते हैं। इस प्रकार की सामान्य क्रियाओं के माध्यम से ज्ञात होता है कि एकेन्द्रिय से लेकर पञ्चेन्द्रिय पर्यन्त जीवों में जो एक सामान्य शक्ति विशेष है, वही शक्ति जीव—शक्ति अर्थात् चेतना—शक्ति है। निम्न श्रेणीय एककोशीय अमीबा, एकेन्द्रिय पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु, वनस्पति जीव भी यथायोग्य आहार ग्रहण करते हैं शत्रु से भयभीत होते हैं, उपकार करने वाले के साथ प्रीति भी करते हैं, अपने लिए एवं अपनी सन्तान के लिए (भावी समय के लिए) आहारादि संग्रह करते हैं अधिक प्रतिकूल परिस्थिति में दुखी होते हैं, काम भोग भी यथायोग्य अंग से करते हैं। वंश परम्परा स्थायी रखने के लिये वंश वृद्धि भी करते हैं। यथायोग्य श्वासोच्छ्वास ग्रहण करते हैं। अन्त में ईह लीला भी संवरण करते हैं। जैसे—वनस्पति सूर्य से किरण, वायुमण्डल से वायु, भूमि से रस आहार के रूप में ग्रहण करती है, उसी प्रकार अग्नि अपना आहार लकड़ी, तेल आदि ईंधन से ग्रहण करती है। उपरोक्त वस्तु के अभाव

कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हता ?!

से उनका मरण भी होता है, जैसे पानी आदि के अभाव से वनस्पति का, ईंधन, ऑक्सीजन के अभाव में अग्नि का मरण होता है। लाजवन्ती पौधे का स्पर्श करने से, भय के कारण लाजवन्ती संकुचित हो जाती है। मौलसिरी आदि कुछ वृक्ष के फूल सुन्दर स्त्री को देखकर विकसित हो जाते हैं। कुछ फलवाले वृक्ष रजस्वला स्त्री के स्पर्श से एवं उनकी छाया से मर जाते हैं। अदरक, आलू, प्याज, लहसून आदि का जो मोटा भाग है, वह उनके आहार का संचय है। मरुभूमि के कुछ वृक्ष भी वर्षा क्रतु में अधिक पानी, ग्रीष्म क्रतु के लिए संचित करते हैं, यह उनकी परिग्रह संज्ञा है। इसी प्रकार समस्ते निम्न श्रेणीय प्राणियों में आहारादि क्रिया समान पायी जाती है। उच्चस्तरीय द्वि—इन्द्रियादि प्राणी में यह क्रिया अत्यन्त स्पष्ट है। इससे यह सिद्ध होता है कि इनमें जो एक समानता पायी जाती है उसका कारण एक साधारण शक्ति है, वह शक्ति ही आत्मा है। आधुनिक वैज्ञानिक भी इस बात को स्पष्ट रूप से मानते हैं।

5—6. स्वर्ग — नरक —

जीव यदि स्वतन्त्र एवं अनादि निधन पदार्थ नहीं होता तब पाप करने पर उसका फल भोगने के लिए नरक कौन जाता और पुण्य का फल भोगने के लिए स्वर्ग कौन जाता ? स्वर्ग—नरक का वर्णन केवल भौतिकवादी एवं चार्वाक को छोड़कर विश्व के समस्त दर्शन मानते हैं। यदि इस प्रकार मानों कि स्वर्ग—नरक का अस्तित्व ही नहीं है, तब असत् का विचार ही नहीं हो सकता है क्योंकि ज्ञान का विषय ज्ञेय है। जब ज्ञेय ही नहीं हैं तो वह ज्ञान का विषय कैसे हो सकता है ? जब ज्ञान ही नहीं होगा तब नितान्त असत् का अन्तर्जल्प रूप वचन एवं बाह्य प्रवृत्ति रूप शब्द का प्रयोग कैसे होगा ? “विशेष्य वाच्यस्य विशेषण वचो, यतो विशेष विनियम्यते च यत्” अर्थात् जिससे जिस विशेष्य का नियम किया जाता है वह वचन विशेष्य है, जो वाच्य है। जिसको खास करके बताना है वह विशेषण होता है। कोई कहेगा कि आकाश कुसुम रूपी पदार्थ नहीं है, आकाश कुसुम शब्द है इससे सिद्ध होता है कि पदार्थ के बिना भी उसका कथन होता है किन्तु यह सत्य नहीं है क्योंकि “आकाश कुसुम” नहीं होने पर भी आकाश का अस्तित्व है एवं कुसुम का अस्तित्व वृक्ष में है, इसलिए ‘आकाश कुसुम’ शब्द अर्थात् वाचक, वाच्य के पदार्थ बिना प्रवृत्त नहीं हुआ है। इससे सिद्ध हुआ कि नरक एक स्वर्ग वाचक शब्द के वाच्य पदार्थ स्वर्ग—नरक हैं।

7. पितर -

अनेक मनुष्य मरकर भूतादि हो जाते हैं और फिर अपने पुत्र, पति आदि को कष्ट, सुख आदि देकर अपने पूर्वभव का हाल बताते हैं। जातिस्मरण होने के बाद अपना पूर्वभव पिता, माता एवं ग्राम का नाम बताने वाले अभी भी पाये जाते हैं। दैश-विदेश की पत्र-पत्रिकाओं में ऐसी घटनाएं प्रकाशित होती रहती हैं। वर्तमान भारत क्षेत्र में काल के प्रभाव से विशेष जातिस्मरण, अवधिज्ञानी, मनःपर्यज्ञान एवं केवलज्ञान का अभाव है। जाति स्मरणादि ज्ञान की उत्पत्ति के लिए विशेष भाव शुद्धि की आवश्यकता है। मरण के समय में यदि निर्मल परिणाम रहते हैं तो परभव में जातिस्मरण हो सकता है। किन्तु पंचम काल के प्रायः सभी जीव अशुभ परिणाम से युक्त होकर अन्य गतियों में उत्पन्न होते हैं, इसलिए वर्तमान काल में विशेष जातिस्मरण आदि ज्ञान नहीं पाया जाता है।

वैज्ञानिक सर ओलिवर लाज ने मरण के बाद आत्मा का अस्तित्व सिद्ध किया है। अंग्रेज कवि ड्राइडन ने आत्मा को अविनाशी माना है।

*Death had no Power immortal soul to Stay,
That when its present body turns to clay,
Seeks a fresh home and with unlesioned might,
Inspires another from with life and light."*

अविनाशी आत्मा को नष्ट करने वाली शक्ति मृत्यु में भी नहीं है। जब यह शरीर मिट्टी रूप में परिणमन होता है उस समय आत्मा अपने योग्य एक अन्य शरीर का अन्वेषण करता है और उसमें जीवन ज्योति प्रकाशित करता है।

वैज्ञानिक टेरटूलियन के अनुसार "Soul is a simple and indivisible substance" अर्थात् आत्मा सादा एवं खण्डविहीन वस्तु है इसलिए आत्मा अविनाशी होना चाहिए। अखण्ड असंयुक्त मूल पदार्थ, कभी भी नष्ट नहीं होता है। आत्मा में उत्पन्न होने वाला ज्ञान अखण्डित होकर रहता है, समिष्टि रूप से रहता है। जैसे - Dog (कुत्ता) शब्द तीन अक्षरों से मिलाकर बना है किन्तु उसका वाच्य पृथक्-पृथक् तीन स्वरूप न होकर एक ही स्वरूप है। इसलिए जब हम Dog शब्द सुनते हैं तो उस समय Dog का अखण्ड ज्ञान एक साथ होता है। इससे सिद्ध होता है कि ज्ञान खण्ड-खण्ड में नहीं है बल्कि अखण्ड है। यह ज्ञान भौतिक वस्तु से निर्मित मस्तिष्क से उत्पन्न नहीं हो सकता है। इस ज्ञान

का पुनरावर्तन भी होता है। इस कारण से जड़त्व से भिन्न आत्म-तत्त्व मानना पड़ेगा ऐसा डॉ. एलीजावेथ फेसर भी कहते हैं। दार्शनिक कवि वर्द्धस्वर्थ मरण को एक निद्रा जैसा मानते हैं।

"Our birth is but a sleep and a forgetting,
The Soul that rises with us, our life's star,
Hath and elsewhere its setting,
and cometh from.... (Ode on Intimations of Immortality)

हमारा जन्म निद्रा से जाग्रत होने के समान है। इस निद्रा में पूर्व जन्म की अनुभूति का विस्मरण हो जाता है। शरीर सहित जन्म लेने वाला आत्मा एक अन्य स्थल में अस्तगत होने वाले नक्षत्र के समान होता है एवं वह बहुत दूर से आता है।

8. चूल्हा-हांडी -

जीव यदि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश-इन पांच महाभूतों से बन जाता है तो दाल, भात, खिचड़ी आदि बनाते समय चूल्हे पर हंडियों में पांच महाभूतों का संसर्ग होने के कारण वहां भी जीव उत्पन्न हो जाना चाहिए। ऐसा होने पर सन्तान उत्पत्ति के लिए माता-पिता के सम्पर्क की क्या आवश्यकता है? जो बाँझ है, उसके भी सुगमता से पुत्र उत्पन्न होना चाहिए। जो सती, विधवा स्त्री है, उसके भी सन्तान उत्पन्न होनी चाहिये। इस प्रकार समवाय से जीव उत्पन्न होना संभव है क्या? ऐसा विचारक विचारिये। ऐसा कह सकते हैं कि यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है क्योंकि एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक समस्त जीव समूच्छन ही होते हैं। यथा-

उवाद सुरणिरया, गब्भजसम्मुच्छिमा हु णरतिरिया।

सम्मुच्छिमा मणस्साऽपज्जत्ता एयवियलक्ष्या ॥

पंचक्खतिरिक्खाऽमो गब्भजसम्मुच्छिया तिरिक्खाणं ।

भोगभुमा गब्भभवा नरपुणा गब्भजा चेव ॥

(गो.जी.) (90-91)

देवगति और नरकगति में उपपाद जन्म ही होता है। मनुष्य तथा तिर्यज्यों में यथा संभव गर्भज एवं समूच्छन दोनों जन्म होते हैं किन्तु लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य और एकेन्द्रिय, द्वि-इन्द्रिय, त्रि-इन्द्रिय, चतुरेन्द्रिय का समूच्छन जन्म ही होता है।

कर्म भूमिज पंचेन्द्रिय, तिर्यज्य, गर्भज एवं समूच्छन ही होते हैं। तिर्यज्यों में

कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हर्ता ?!

जो भोग भूमिज तिर्यञ्च है वे गर्भज ही होते हैं और जो पर्याप्त मनुष्य हैं वे गर्भज ही होते हैं

उवादगब्जेसु य लद्धिअपज्जतगा ण णियमेण ।

णर सम्मुच्छिमजीवा लद्धि अपज्जतगा चेव ॥

(गो.जी.) (92)

उपपाद और गर्भ जन्म वालों में नियम से लब्ध्यपर्याप्तक नहीं होते और सम्मूच्छन मनुष्य नियम से लब्ध्यपर्याप्तक होते हैं। सम्मूच्छन मनुष्य चक्रवर्ती की पट्टरानी को छोड़कर अन्य कर्म भूमिज आर्य खण्ड की स्त्रियों की योनि, कांख, स्तन, मल-मूत्रादि में उत्पन्न होते हैं। देव एवं नारकी का अपने-अपने योग्य यथाक्रम पलंग-शय्या एवं घंटादि शुभ-अशुभ आकार वाली उत्पत्ति स्थान में उत्पन्न होना उपपाद जन्म है। जो माता-पिता के रज-वीर्य के बिना चारों ओर से पुद्गल को ग्रहण कर और गन्दे स्थान पर, जहां कि मूत्र-वीर्यादि पड़ा हुआ है, वहां उत्पन्न होते हैं, वे सम्मूच्छन हैं। वे मनुष्यों की आंखों के द्वारा दिखाई नहीं देते। उनका जीवन अत्यन्त क्षुद्र जीवन है। वे एक श्वासोच्छ्वास में 18 बार जन्म और 18 बार मरण करते हैं। एक श्वासोच्छ्वास एक मुहूर्त का 3772 वां भाग है। मुहूर्त प्रायः 48 मिनट का होता है।

विशेषार्थ-

आत्मा जिसके द्वारा शरीर, आहार और इन्द्रियों के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करता है, उसको जन्म कहते हैं। जन्म तीन प्रकार के हैं— (1) सम्मूच्छन जन्म (2) गर्भज जन्म (3) उपपाद जन्म। माता-पिता के रज-वीर्य के मिश्रण से स्त्री के उदर में जो संतान उत्पन्न होती है उसे गर्भज जन्म कहते हैं। देव और नारकियों का अपने-अपने योग्य यथाक्रम पलंग-शय्या एवं घंटादि शुभ-अशुभ आकार वाले उत्पत्ति स्थान से उत्पन्न होना उपपाद जन्म है। माता-पिता के रज-वीर्य के बिना चारों ओर से पुद्गलों को ग्रहण कर अवयवों की रचना कर उत्पन्न होना, सम्मूच्छन जन्म कहलाता है।

त्रिषु लोकेषूर्ध्मधस्तिर्यक् च देहस्य समन्ततो ।

मूर्च्छनं सम्मूर्च्छनमवयवं प्रकल्पनम् ॥

तीनों लोकों में ऊपर, नीचे और तिरछे देह के चारों ओर से मूर्च्छन अर्थात् ग्रहण होना सम्मूच्छन है। उपयुक्त जल, वायु, उष्णता एवं शरीरादि के योग्य

कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हर्ता ?!

पुद्गल परमाणुओं का समवाय जब एक स्थान में होता है, उस समय अन्य स्थान से विग्रह गति से आकर जीव उत्पन्न होता है इसको सम्मूच्छन जन्म कहते हैं। जैसे शीत ऋतु में सेम की लता के ऊपर सायंकाल कोई जीव नहीं रहते हैं किन्तु रात्रि में यदि कोहरा आदि हो जाता है, तब उसमें अनेक जीव हो जाते हैं। ये जीव कैसे उत्पन्न हुए हैं? यहां तो माता-पिता का संयोग नहीं है। वैज्ञानिक कृत रासायनिक मिश्रण भी नहीं है। उन जीवों की जो उत्पत्ति है, वे सम्मूच्छन जीव है। उनका सम्मूच्छन जन्म होता है। इसी प्रकार मर्यादा रहित दही में, आहार में, आटे में, पापड़ में, अचार में जो जीव उत्पन्न होते हैं वे भी सम्मूच्छन जीव हैं। बीज को उपयुक्त जल, वायु मिलने पर जो अंकुर उत्पन्न होता है वह भी सम्मूच्छन जीव है। गोबर में, मल में, पेट में कृमि उत्पन्न होते हैं वे भी सम्मूच्छन जीव हैं।

कुछ जलचर जीव तथा मत्स्य भी सम्मूच्छन होते हैं। चींटी, लट, पतंगा, खटमल, जोंक, बिछू, पटेर, शंख, सीप, तितली आदि सम्मूच्छन जीव हैं। इतना ही नहीं, मनुष्य भी सम्मूच्छन उत्पन्न होते हैं, किन्तु उनका आकार एवं आयु अत्यन्त कम है। उनकी पर्याप्ति पूर्ण नहीं होती है। ये इतने सूक्ष्म होते हैं कि इन्द्रियों के द्वारा उनका ग्रहण नहीं हो सकता है। इनको लब्ध्यपर्याप्तक जीव कहते हैं। दृश्यमान समस्त मनुष्य पर्याप्तक हैं। क्या कोई वैज्ञानिक एवं भौतिकवादी केवल रासायनिक प्रक्रिया से पर्याप्त मनुष्य की सृष्टि कर सकता है? यदि कर सकता है तो उसे विश्व के सामने प्रदर्शित करना चाहिये।

डार्विन आदि वैज्ञानिक मानते हैं कि पहले पृथ्वी पृष्ठ में जीव नहीं था, किन्तु रासायनिक प्रक्रिया के माध्यम से क्रमशः निम्न श्रेणीय जीवों की सृष्टि हुई। इस जीव-जाति में क्रमशः परिवर्तन हुआ। इस परिवर्तन के फलस्वरूप मनुष्य जाति की सृष्टि हुई।

यदि जाति समुदाय परिवर्तित हो करके, अन्य जाति रूप में परिणमन होता तो अभी तक पहले की अनेक जातियां पृथ्वी पृष्ठ में कैसे दिखाई देती हैं? यदि बन्दर जाति ही परिवर्तित होकर मनुष्य हुआ तब वर्तमान में भी बन्दर से मनुष्य जाति की सृष्टि क्यों नहीं होती है। खाद्य-ग्रहण आदि संचार के कारण बन्दरों की पूँछें कटते-कटते जब पूर्णतः कट गयी, तब वर्तमान में भी बन्दरों की पूँछें कैसे उपलब्ध होती हैं? अभी भी बन्दर खाद्य-आहारण के लिए संचार करते हैं तो क्या उनकी पूँछ धिसने का प्रकरण प्राप्त होता है या नहीं? जिराफ अभी

कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हर्ता ?!

भी उँचे वृक्ष से पत्ते खाते हैं तो उनकी गर्दन पहले से अभी अधिक बड़ी क्यों नहीं होती है ?

कोई कह सकता है कि जैसे-चावल, गुड़ आदि अनशीली (अमादक) वस्तु भी संयोग के कारण कुछ समय के बाद नशा उत्पन्न करने वाली हो जाती हैं, उसी प्रकार अचेतन रूप वस्तुओं के संयोग से चेतना शक्ति भी उत्पन्न करने वाली हो सकती है किन्तु यह सिन्धान्त सम्पूर्ण अमूलक है। क्योंकि जो चावल, गुड़ आदि में अप्रगट रूप से अचेतन रूप नशा था वहीं नशा संयोग के कारण अचेतन शक्ति युक्त नशा के रूप में प्रगट हो गया। मद का नशा, चेतनात्मक नहीं है क्योंकि इस नशे में चेतना गुण नहीं है। इस नशे में सुख-दुख, हर्ष-विषाद विवेक-अविवेक, मन, शक्ति, आहार, भय, मैथुन संज्ञादि जो जीव के गुण हैं वे नहीं पाये जाते हैं इसलिए सिन्धु हुआ कि पुद्गल के संयोग से जो शक्ति उत्पन्न होती है वह पौद्गलिक ही है। पदार्थ में वस्तुतः परिणमन शक्ति है किन्तु वह परिणमन अपने द्रव्यत्व एवं गुण को छोड़कर अन्यत्व रूप में परिणमन नहीं करता है। एक समय में मिट्टी विद्युत रूप परिणमन कर सकती है किन्तु किसी भी प्रकार से निर्जीव रसायन की शक्ति से उसमें चेतन शक्ति की उत्पत्ति नहीं हो सकती है क्योंकि द्रव्य दृष्टि से मिट्टी एवं विद्युत शक्ति एक ही है इसलिए मिट्टी परिवर्तित होकर विद्युत शक्ति रूप हो सकती है किन्तु निर्जीव-रसायन-शक्ति एवं जीव की चेतना-शक्ति दोनों द्रव्य एवं गुण दृष्टि से अत्यन्त पृथक् हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि निर्जीव से सजीव की सुष्ठि नहीं हो सकती है।

9. मृतक-

यदि भौतिक पदार्थों के मिश्रण से ज्ञानादि गुण प्रकट होते हैं एवं पंचभूत का समुदाय ही जीव है, तब मृतक शरीर में पाँचों भूत पाये जाते हैं तो भौतिक मृतक शरीर क्यों भौतिकवाद का प्रतिपादन नहीं करता है ? भौतिक मृतक शरीर के अपने भौतिकवाद की पुष्टि करने के लिए एवं प्रत्यक्ष प्रमाण दर्शाने के लिए प्रत्यक्ष से वाद-विवाद करना चाहिए। मृतक शरीर में पौद्गलिक इन्द्रियादि होने पर भी इन इन्द्रियों का कार्य क्यों नहीं होता है ? और तो और, जब उस शरीर को ज्वलन्त अग्नि में डालते हैं तब अपनी रक्षा करने के लिए वह विरोध तक क्यों नहीं करता है एवं वहांसे भाग क्यों नहीं जाता है ? भौतिक वस्तु के संयोग से चेतन शक्ति उत्पन्न होने पर जब शब को अग्नि किंवा जल में डालते हैं, उस समय भौतिक

कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हर्ता ?!

वस्तु के संयोग के कारण चेतन, - शक्ति की और अधिक वृद्धि होनी चाहिए, जैसे अग्नि में घृत डालने से अग्नि वृद्धि को प्राप्त होती है। इस प्रकार समस्त सिन्धान्तों से यह निष्कर्ष निकलता है कि जीव एक अनादि अनिधन अकृत्रिम चेतन स्वरूप वस्तु है।

कर्ता के विभिन्न रूप

पुण्गलकम्मादीणं कर्ता ववहारदो दु णिद्ययदो ।

चेदणकम्माणादा सुद्धणया सुद्धभावाणं ॥

According to Vyahara Naya is the doer of the Pudgala karmas. According to Nischaya Naya (Jiva is the doer of) Thought karmas. According to Suddha Naya (Jiva is the doer) of Suddha Bhavas.

आत्मा व्यवहार से पुद्गल कर्म आदि का कर्ता है, निश्चय से चेतन कर्म का कर्ता है और शुद्ध नय से शुद्ध भावों का कर्ता है।

इस गाथा में जीव के विभिन्न कर्तृत्वभावों का वर्णन किया गया है। व्याकरण की दृष्टि से 'स्वतन्त्र कर्ता' अर्थात् जो कर्म को स्वतंत्र रूप से करता है उसे कर्ता कहते हैं। जीव भी विभिन्न अवस्था में विभिन्न कर्मों का कर्ता बनता है। उपचरित असद्भूत व्यवहार नय से ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्मका तथा 'आदि' शब्द से औदारिक, वैक्रियक और आहारक रूप तीन शरीर तथा आहार आदि छह पर्याप्तियों के योग्य जो पुद्गल पिण्ड रूप नो / ईष्ट कर्म है उसका कर्ता है। स्थूल व्यावहारिक दृष्टि से अर्थात् उपचरित असद्भूत व्यवहार नय से घट, पट, कुर्सी, टेबल, घर, चटाई, विभिन्न वैज्ञानिक उपकरण, ईंट, मूर्ति आदि का भी यह जीव कर्ता है। निश्चय नय की अपेक्षा अशुद्ध निश्चय नय से जीव चेतन कर्म अर्थात् मिथ्यात्व भाव, ईर्ष्या भाव, धृणा, द्वेष, लोभ, काम प्रवृत्ति, अहं प्रवृत्ति का कर्ता है परन्तु परम शुद्ध निश्चय नय से जीव शुद्ध-बुद्ध, नित्य-निरंजन, सच्चिदानन्द स्वरूप स्वभाव में परिणमन करता है तब अनंत ज्ञान, अनंत अतीन्द्रिय सुखादि भावों का कर्ता होता है। छद्मस्थ अवस्था में भावना रूप विवक्षित एक देश शुद्ध निश्चय नय से पूर्णरूप से अनंत ज्ञानादि भावों का कर्ता होता है। वस्तुतः यहां जो आध्यात्मिक दृष्टि है उसकी अपेक्षा अशुभ, शुभ, शुद्ध भावों का जो परिणमन है उसी का कर्तृत्वपना यहां कहा गया है, न कि हस्तपादादि से जो कार्य किया

कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हर्ता ?

जाता है उसे यहां कर्तापने में स्वीकार किया गया है और एक विशेष आध्यात्मिक दृष्टि यह है कि शुद्ध निश्चय नय से जो शुद्ध भावों का कर्ता कहा गया है उसका अर्थ यह है उन शुद्ध भावों का जीव वेदन करता है न कि उन शुद्ध भावों का निर्माण करता है या बनाता है। प्राचीन आचार्यों ने भी जीव के विभिन्न कर्तापने का वर्णन विभिन्न दृष्टिकोण से किया है। यथा—

जीव परिणामहेदुं कम्मतं पुण्गल परिणमदि ।
पुण्गल कम्मणिभितं तहेव जीवों वि परिणमदे ॥

गा. 18 समयसार

जीव परिणाम को निमित्त मात्र करके पुद्गल कर्मभाव से परिणमन करते हैं। इसी प्रकार दैव (कर्म) को शक्ति प्रदान करने वाला पुरुष परम पुरुषार्थ से हीन पुरुषार्थ है और उस शक्ति के अनुशासन में शासित होने वाला पुरुष है। जब पुरुष उसको शक्ति प्रदान करता है, तब दैव विभिन्न रूप धारण करके विभिन्न कार्य करता है।

जह पुरिसेणाहारो गहिदो परिणमदि सो अणेय विहं ।

मं सवसारुहिरादिभावे उदराग्ने संजुत्तो ॥

जैसे पुरुष द्वारा ग्रहण किया गया आहार उदराग्नि से युक्त हुआ अनेक प्रकार मांस, रुधिर आदि भावों रूप परिणमता है, उसी प्रकार कर्म पुद्गल भी जीवों के रागादि भावों को प्राप्त करके 8 प्रकार अथवा अनेक प्रकार दैव रूप में परिणमन करता है।

भावो कम्म णिमित्तो कम्मं पुण भाव कारणं हवदि ।

ण दु तेसिं खलु कत्ता ण विणा भूदा दु कत्तारं ॥

गा. 60 पंचास्तिकाय

निर्मल चैतन्यमई ज्योति स्वभाव रूप शुद्ध जीवास्तिकाय से प्रतिपक्षी भाव जो मिथ्यात्व व रागादि परिणाम है वह कर्मों के उदय से रहित चैतन्य का चमत्कार मात्र जो परमात्मा स्वभाव है, उससे उल्टे जो हृदय में प्राप्त कर्म है उनके निमित्त से होता है तथा ज्ञानावरण आदि कर्मों से रहित जो शुद्धात्म तत्त्व है उससे विलक्षण जो नवीन द्रव्यकर्म है सो निर्विकार शुद्ध आत्मा की अनुभूति से विरुद्ध जो रागादि भाव है उनके निमित्त से बंधते हैं। ऐसा होने पर भी जीव सम्बन्धी रागादिभावों का और द्रव्य कर्मों का परस्पर उपादान कर्ता जीव ही है तथा द्रव्यकर्मों का

कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हर्ता ?!

उपादानकर्ता कर्मवर्गणा योग्य पुद्गल ही है। दूसरे व्याख्यान से यह तात्पर्य है कि यद्यपि शुद्ध निश्चय नय से विचार किये जाने पर जीव रागादि भावों का कर्ता है यह बात सिद्ध है।

आदा कम्म मलिमसो परिणामं लहदि कम्म संजुत्तं ।

तत्तो सिलिसदि कम्मं तम्हा कम्मं तु परिणामो ॥

121 प्रवचन सार

‘संसार’ नामक जो यह आत्माका तथाविध उस प्रकार का परिणाम है वही द्रव्यकर्म के चिपकने का बंध हेतु है, अब उस प्रकार के परिणाम का हेतु कौन है? इसके उत्तर में कहते हैं कि द्रव्यकर्म उसका हेतु है क्योंकि द्रव्य कर्म की संयुक्तता से ही वह बन्ध है।

ऐसा होने से इतरेतराश्रय दोष आयेगा क्योंकि अनादि सिद्ध द्रव्य कर्म के साथ सम्बद्ध आत्मा का जो पूर्व का द्रव्यकर्म है उसका वहाँ हेतु रूप से ग्रहण किया गया है।

इस प्रकार नवीन द्रव्यकर्म जिसका कार्यभूत है और पुराना द्रव्यकर्म जिसका कारणभूत है, ऐसा आत्मा का तथाविध परिणाम का कर्ता भी उपचार से द्रव्य कर्म ही है और आत्मा भी अपने परिणाम का कर्ता भी उपचार से है।

जीव परिणाम हेदुं कम्मतं पुण्गला परिणमति ।

पुण्गल कम्मणिभितं तहेव जीवों वि परिणमदि ॥८६

ण वि कुव्वदि कम्मगुणे जीवों कम्मं तहेव जीवगुणे ।

अण्णोण्ण णिमित्तेण दु परिणामं जाण दोणहंपि ॥८७

यद्यपि जीव के रागद्वेष परिणामों का निमित्त पाकर पुद्गल द्रव्य कर्मत्व रूप परिणमन करता है। वैसे ही पौद्गलिक कर्मों के उदय का निमित्त पाकर जीव रागादि रूप परिणमन करता है। तथापि जीवकर्म के गुण रूपादिक को स्वीकार नहीं करता, उसी भाँति कर्म भी जीव के चेतनादिक गुणों को स्वीकार नहीं करता किन्तु मात्र इन दोनों का परस्पर एक दूसरे के निमित्त से उपर्युक्त विकारी परिणमन होता है।

एदेण कारणेण दु कत्ता आदा सकेण भावेण ।

पुण्गल कम्मकदाणं ण दु कत्ता सव्वभावाणं ॥

गा. 88 समयसार

कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हता ?!

इस प्रकार जीव और पुद्गल के परस्पर में निमित्त कारणपना है इसका व्याख्यान किया गया है।

व्यवहार नय से भिन्न षट्कारक के अनुसार जीव के रागद्वेष निमित्त पाकर कर्मपरमाणु, द्रव्यकर्म रूप में – परिणमन करता है। द्रव्य कर्म के उदय से भाव कर्म उत्पन्न होते हैं परन्तु निश्चयनय से एक द्रव्य अन्य द्रव्यका कर्ता नहीं होने से जीव के परिणाम का हेतु पुद्गल नहीं है एवं पुद्गल के परिणाम का हेतु जीव नहीं है। पंचास्तिकाय में कहा है—

‘निश्चयनयेनाभिन्नकारकत्वाकर्मणो

जीवस्य च स्वयं स्वरूप कर्तृत्वमुक्तम् ।’

निश्चय से अभिन्न कारक होने से कर्म और जीव स्वयं स्वरूप के अपने अपने रूप के कर्ता हैं। निश्चय से जीव, पुद्गल का कर्ता नहीं होने पर भी व्यवहार नय से कर्ता है।

यदि एकान्ततः निश्चयनय के समान व्यवहारनय से भी जीव, कर्म का कर्ता नहीं हैं तब अनेक अनर्थ उत्पन्न हो जायेंगे। व्यवहार से भी जीव कर्म का कर्ता नहीं होने पर कर्मबन्ध नहीं होगा, कर्मबन्ध के अभाव से संसार का अभाव हो जायेगा, संसार के अभाव से मोक्ष का भी अभाव हो जायेगा, जो कि आगम, तर्क, प्रत्यक्ष एवं अनुभव विरुद्ध है। निश्चयनय का विषय व्यवहार से संयोजना करके शिष्य, गुरुवर्य कुन्दकुन्दाचार्य से निम्न प्रकार प्रश्न करता है—

कर्मं कर्मं कुव्वदि जदि सो अप्पा करेदि अप्पाणं ।

किधु तस्स फलं भुज्जदि अप्पा कर्मं च देदि फलं ॥

गा. 63 पंचास्तिकाय प्राभृत

अगे पूर्वोक्त प्रकार से अभेद छह कारक का व्याख्यान करते हुए निश्चयनय से यह व्याख्यान किया गया है। इसे सुनकर “नयों” के विचारों को न जानता हुआ शिष्य एकान्त का ग्रहण करके पूर्व पक्ष करता है।

यदि द्रव्यकर्म, एकान्त से बिना जीव के परिणाम की अपेक्षा करता है और वह आत्मा अपने को ही करता है – द्रव्यकर्म को नहीं करता है तो किस तरह आत्मा उस बिना किये हुए कर्म के फल को भोगता है और यह जीव से बिना किया हुआ कर्म आत्मा को फल कैसे देता है? इस प्रश्न का आगमोक्त यथार्थ प्रत्युत्तर देते हुए कुन्दकुन्द स्वामी बताते हैं—

कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हता ?!

जीवा पुण्गलकाया अणोण्णागाढगहणपडिबद्धा ।

काले विभुज्जमाणा युहुदुक्यं दिति भुंजन्ति ॥६७

आगे शिष्य ने जो पूर्वपक्ष किया था कि बिना किये हुए कर्मों का फल जीव किस तरह बोता है उसी का उत्तर नय विभाग से जीव फल का भोगता है ऐसा युक्तिपूर्वक दिखाते हैं।

संसारी जीवों के अपने अपने रागादि परिणामों के निमित्त से तथा पुद्गलों में स्त्रिय-रुक्ष गुण के कारण द्रव्य-कर्मवर्गणायें जीव के प्रदेशों में जो पहले से ही बंधी हुई होती हैं वे ही अपनी स्थिति के पूरे होते हुए उदय में आती हैं तब अपने अपने फल को प्रगट कर झड़ जाती हैं, उसी समय वे कर्म अनाकुलता लक्षण जो पारमार्थिक सुख है उससे विपरीत परम आकुलता को उत्पन्न करने वाले सुख तथा दुःख उन जीवों का मुख्यता से देती हैं, जो मिथ्यादृष्टि हैं अर्थात् जो निर्विकार चिदानन्दमयी एकस्वभावरूप जीव को और मिथ्यात्व रागादि भावों को एक रूप ही मानते हैं और जो मिथ्याज्ञानी हैं अर्थात् जिनको यह ज्ञान है कि जीव राग-द्वेष – मोहादि रूप ही होते हैं तथा जो मिथ्या चारित्री हैं अर्थात् जो अपने को रागादि के परिणमन करते हुए जीव अभ्यंतर में अशुद्ध निश्चय से ही हर्ष या विषाद रूप तथा व्यवहार से बाहरी पदार्थों में नाना प्रकार इष्ट-अनिष्ट इन्द्रियों के विषयों के प्राप्ति रूप मधुर या कटुक विष के रस के आस्वाद रूप सांसारिक सुख या दुःख की वीतराग परमानन्द यी सुखामृत के रसास्वाद के भोग को न पाते हुए भोगते हैं, ऐसा अभिप्राय जानना।

एवं कर्ता भोत्ता होज्जं अप्पा सगेहि कर्मेहि ।

हिंडदि पारमपारं संसारं मोहसंच्छण्णो ॥९

इस प्रकार अपने कर्मों से कर्ता भोक्ता होता हुआ आत्मा मोहाच्छादित वर्तता हुआ अनंत संसार में परिभ्रमण करता है। इस प्रकार प्रगट प्रभुत्व शक्ति के कारण जिसने अपने कर्मों द्वारा कर्तृत्व एवं भोक्तृत्व का अधिकार ग्रहण किया है ऐसे इसआत्मा को अनादि मोहाच्छादितपने के कारण विपरीत अभिनिवेश की उत्पत्ति होने से सम्यग्ज्ञान ज्योति अस्त हो गई है, इसलिए यह सान्त अथवा अनंत संसार में परिभ्रमण करता है।

जं जं जे जीवा पज्जाणं परिणमंति संसारे ।

रायस्स य दोस्स य मोहस्स वसा मुणेयव्वा ॥९८८

कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हर्ता?!

संसार में जो जीव जिस जिस पर्याय से परिणमन करते हैं वे सब राग-द्रेष और मोह के वशीभूत होकर ही परिणमते हैं, ऐसा जानना।

भोक्ता के विभिन्न रूप

ववहारा सुहदुक्खं पुग्गलकम्मफलं पभुजेदि।

आदा णिच्छयणयदो चेदणभावं खु आदरस् ॥१॥

According to Vyavahara Naya, Jiva enjoys happiness and misery the fruits or Pudgala karmas, According to Nischaya Naya, Jiva has conscious Bhavas only.

आत्मा व्यवहार से सुख-दुःख रूप पुद्गल कर्मों को भोगता है और निश्चय नय से आत्मा चेतन स्वभाव को भोगता है।

क्रिया की प्रतिक्रिया होती है। न्यूटन के तृतीय गति सिद्धान्तानुसार "To every action, there is an equal and opposite reaction."

अर्थात् जहां क्रिया है वहां पर उसकी प्रतिक्रिया भी होती है एवं प्रतिक्रिया उस क्रिया की विपरीत समानुपाती क्रिया होती है। जो जैसा करता है वह उसी प्रकार उसका भोक्ता भी होता है। जैसे-बबूल के वृक्ष बोने पर बबूल का वृक्ष उत्पन्न होगा एवं उसमें बबूल की ही फलियां लगेंगी, आम के बीज बोने पर आम के वृक्ष ऊर्गेंगे एवं उसमें आम के फल लगेंगे। इसलिये कहते हैं "As you sow, sow you reap" अर्थात् जैसा बोयेंगे वैसा काटेंगे व पायेंगे। आत्मानुशासन में गुणभद्र स्वामी ने कहा भी है—

यत्प्राञ्जन्मनि संचितं तनुभृतां कर्मशुभं वा शुभं।

यदैवं यदुदीरणादनुभवन् दुःख सुख वागतम् ॥

जीव ने पूर्व भव में जिस अशुभ भाव रूप कर्त्तापने से पाप कर्म का एवं शुभभाव रूप कर्त्तापने से पुण्य कर्म का संचय किया है वह दैव है उसकी उदीरणा उदय से यथाक्रम से दुःख एवं सुख का अनुभव करता है।

गोस्वामी तुलसीदास ने भी कहा है—

स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा, फलं तदीयं लभते शुभाशुभम्।

परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटम्, स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा ॥(३०)॥

पहले जो जीव पुण्य एवं पाप कर्म करता है उसका ही फल शुभ एवं अशुभ रूप से प्राप्त करता है। यदि कोई दूसरे के द्वारा दिये गये शुभ या अशुभ फल

कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हर्ता?

को प्राप्त होने लगे तो स्वयं किया हुआ कर्म निरर्थक हो जायेगा।

निजार्जितं कर्म विहाय देहिनो, न कोऽपि करयाऽपि ददापि किंचन्।

विचार यन्नेव मनन्य मानसः परो ददातीति विमुञ्च शेमुषीम् ॥३॥

अपने उपार्जित कर्म छोड़कर कोई भी प्राणी किसी भी प्राणी को कुछ भी सुख या दुःख नहीं देता है ऐसा विचार करते हुए हे आत्मन्! तू एकाग्र चित्त हो और दूसरा देता है इस बुद्धि को छोड़।

जीव उपचरित असद्भूत व्यवहार नय से इष्ट तथा अनिष्ट पांचों इन्द्रियों के विषयों से उत्पन्न सुख तथा दुःख को भोगता है। अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय से अन्तरंग में सुख तथा दुःख को उत्पन्न करने वाला द्रव्य-कर्म रूप पुण्य एवं पाप का उदय है उसको भोगता है। अशुद्ध निश्चयनय से रलत्रय से उत्पन्न अविनाशी अतीन्द्रिय अक्षय आनन्द रूप सुखामृत को भोगता है।

जीव के छोटे-बड़े शरीर में व्याप्त का कारण

(जीव का प्रदेशत्व स्वभाव)

अणुगुरुदेहप्रमाणो उवसंहारप्पसप्पदो चेदा।

असमुहृदो ववहारा णिच्छयणयदो असंख्येदो वा ॥१०॥

According to Vyavahara Naya, the conscious Jiva, being without Samudghata, becomes equal in extent to a small or a large body, by contraction and expansion; but according to Nischaya Naya, (it) is existent in innumerable Pradesas.

व्यवहार नय से समुद्घात अवस्था के बिना यह जीव, संकोच तथा विस्तार से छोटे और बड़े शरीर के प्रमाण रहता है और निश्चयनय से जीव असंख्यात प्रदेशों का धारक है।

जीव में संकोच-विस्तार करने की शक्ति है, जिस प्रकार रबड़, इलास्टिक आदि में संकोच-विस्तार की शक्ति होती है। इस संकोच-विस्तार की शक्ति के कारण ही जीव संसार-अवस्था में शरीर-नाम-कर्म के उदय से जिस छोटे-बड़े शरीर को प्राप्त करता है उस शरीर के आकार रूप यह जीव हो जाता है। जिस प्रकार दीपक का प्रकाश छोटे-बड़े Room कमरे के कारण संकोच-विस्तार को प्राप्त हो जाता है।

कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हर्ता ?!

आचार्य उमास्वामी ने कहा भी है—

प्रदेशसंहार विसर्पाभ्याम् प्रदीपवत्। अ. २

(१६ स्वतन्त्रता के सूत्र पृ. २८९)

प्रदेश संहारविसर्पाभ्यां प्रदीपवत् लोकाकाशे असंख्येयभागादिषु
जीवानामवगाहो भवति।

क्योंकि प्रदीप के समान जीव के प्रदेशों का संकोच और विस्तार होता है। लोकाकाश में जितने प्रदेश होते हैं, उतने ही प्रदेश एक जीव द्रव्य में होते हैं। यहाँ प्रश्न होना स्वाभाविक है कि दोनों के प्रदेश समान हैं तो एक लोकाकाश में एक जीव रह सकता है, दो, तीन, संख्या, असंख्यात, अनन्त नहीं? इस प्रश्न का उत्तर इस सूत्र में दिया गया है।

कार्माण शरीर के वश से ग्रहण किये गये सूक्ष्म एवं बादर-शरीर के अनुसार अनुवर्तन होना संहार और विसर्प है। अमृत स्वभाव वाला भी आत्मा अनादि सम्बन्ध के प्रति एकत्व हीने से कथंचित् मूर्तता को धारण किये हुये हैं और लोकाकाश के बराबर इसके प्रदेश हैं फिर भी जब यह कार्माण शरीर के कारण ग्रहण किये गये सूक्ष्म शरीर में रहता है तब इसके प्रदेशों का शुष्क चर्म के समान संकोचित होकर प्रदेशों का संहार हो जाता है। जब कार्माण शरीर के कारण बादर शरीर में रहता है तब जल में तेल के समान प्रदेशों का फैलाव होकर विसर्पण हो जाता है।

उस संकोच-विस्तार के कारण प्रदीप के समान लोक के असंख्येयादि भागों में जीव रहता है। जैसे-निरावरण आकाश प्रदेश में रखे हुए प्रदीप का आकाश बहुदेशव्यापी होने पर भी सिकोरा, मानिका और कमरे आदि आवरण के कारण सिकोरा आदि परिमाण वाला हो जाता है अर्थात् निरावरण आकाश प्रदेश में बहुत दूर तक व्याप्त होकर रहने वाला भी दीपक का प्रकाश हो जाता है अर्थात् उतने में ही सीमित हो जाता है, उसी प्रकार संहार और विसर्प स्वभाव होने के कारण दीपक के समान आत्मा के भी असंख्य एक भागादि में परिछिन्न वृत्ति जाननी चाहिए।

पंचास्तिकाय में कुन्दकुन्द देव ने भी कहा है—
जह पउमरायरयणं खित्त खीरे पभासयदि खीरं।
तह देही देहत्यो सदेहमित्तं पभासयदि॥

३३ पृ. १२३

कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हर्ता ?!

जिस प्रकार पद्मरागमणि दूध में डाला जाने पर अपने से अभिन्न प्रभा समूह द्वारा उस दूध में व्याप्त होता है, उसी प्रकार जीव अनादिकाल से कषाय द्वारा मलिनता के कारण प्राप्त शरीर में रहता हुआ स्वप्रदेशों द्वारा उस शरीर में व्याप्त होता है और जिस प्रकार अग्नि के संयोग से उस दूध में उफान आने पर उस पद्मरागरल के प्रभासमूह में उफान आता है। अर्थात् वह विस्तार को प्राप्त होता है और दूध बैठ जाने पर प्रभा समूह भी बैठ जाता है, उसी प्रकार विशिष्ट आहारादि के वश उस शरीर में वृद्धि होने पर उस जीव के प्रदेश विस्तृत होते हैं और शरीर फिर सूख जाने पर प्रदेश भी संकुचित हो जाते हैं। पुनः जिस प्रकार वह पद्मरागरल दूसरे अधिक दूध में व्याप्त होता है, उसी प्रकार जीव दूसरे बड़े शरीर में स्थिति को प्राप्त होने पर स्वप्रदेशों के विस्तार द्वारा उस बड़े शरीर में व्याप्त होता है और जिस प्रकार वह पद्मरागरल दूसरे कम दूध में डालने पर स्वप्रभासमूह के संकोच द्वारा उस थोड़े दूध में व्याप्त होता है, उसी प्रकार जीव अन्य छोटे शरीर में स्थिति को प्राप्त होने पर स्वप्रदेशों के संकोच द्वारा उस छोटे शरीर में व्याप्त होता है।

यहाँ यह प्रश्न होता है कि, अमृत जीव का संकोच - विस्तार कैसे संभव है? उसका समाधान किया जाता है—

अमृत के संकोच-विस्तार की सिद्धि तो अपने अनुभव से साध्य है, क्योंकि सबको स्वानुभव से स्पष्ट है कि जीव स्थूल तथा कृश शरीर में तथा बालक और कुमार के शरीर में व्याप्त होता है। जीव के जो प्रदेश मोटे शरीर में फैले हुए थे, वे ही शरीर के पतले हो जाने पर सिकुड़ गये तथा बालक के शरीर में जो जीव के प्रदेश सिकुड़े हुये थे वे ही फैल जाते हैं। इस प्रकार से जीव के प्रदेशों का संकोच तथा विस्तार सिद्ध होता है। पुद्गल तो द्रव्य की अपेक्षा से एक प्रदेश मान होने से यथोक्त पूर्व कथित प्रकार अप्रदेशी है, तथापि वो प्रदेश आदि द्वयणुक आदि स्कंधों के हेतुभूत तथाविध उस प्रकार के रिस्मध और रुक्ष गुण रूप परिणमित होने की शक्ति रूप स्वभाव के कारण उस पुद्गल के प्रदेशों का बहुप्रदेशत्व का उद्भव है। इसलिये पर्यायतः अनेक प्रदेशत्व की भी संभावना होने से पुद्गल द्विप्रदेशत्व से लेकर संख्यात, असंख्यात और अनन्त प्रदेशत्व भी न्याय युक्त है।

लोगरस्य असंख्येज्जदिभागप्पहुदिं तु सव्वलोगोत्ति।

अप्पदेसविसप्पणसंहारे वावडो जीवो॥

गा. ५८४ गोम्यसार जीवकाण्ड पृ. २६४

कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हर्ता ?!

एक जीव अपने प्रदेशों के संहार-विसर्प की अपेक्षा लोक के असंख्यातवें भाग से लेकर सम्पूर्ण लोक में व्याप्त होकर रहता है।

आत्मा में प्रदेश संहार-विसर्पत्व गुण है। इसके निमित्त से उसके प्रदेश संकुचित तथा विस्तृत होते हैं, इसलिये एक क्षेत्र शरीर प्रमाण की अपेक्षा अंगुल के असंख्यातवें भाग से लेकर हजार योजन तक का होता है। इसके आगे समुद्रधात की अपेक्षा लोक के असंख्यातवें भाग तथा सम्पूर्ण लोक प्रमाण भी होता है।

समुद्रधात के समय आत्मप्रदेश कार्मण शरीर एवं तैजस शरीर के साथ मूल औदारिक शरीर को छोड़कर बाहर निकलते हैं जिसके कारण गाथा में कहा गया है कि असमुद्रधात के समय में जीव स्वशरीर के बराबर रहता है। समुद्रधात का स्वरूप एवं उसका भेद का वर्णन नेमिचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती ने गोम्मट्सार जीवकाण्ड में निम्न प्रकार से किया है—

मूलसरीरमछंडिय उत्तरदेहस्य जीवपिंडस्य।

णिञ्जमणं देहादो होदि समुग्धाद णामं तु॥

गा. ६६७ गो.सा. जीवकाण्ड पृ. ७२६

मूल शरीर को न छोड़कर, उत्तर प्रदेश के व जीवपिंड के प्रदेशों का शरीर से बाहर निकलना सो समुद्रधात है।

वेयणकसायवेगुवियो य मरणंतियो समुग्धादो।

तेजाहारो छट्ठो सत्तमओ केवलीणं तु ॥६६८

वह समुद्रधात, वेदना, कषाय, वैक्रियिक, मराणान्तिक, तैजस, आहारक और केवली इस तरह सात प्रकार का होता है।

यहां पर “अणु” शब्द से उत्सेधनांगुल के असंख्यातवें भाग परिमाण जो लक्ष्य अपर्याप्तक सूक्ष्म निगोदशरीर है, उसका ग्रहण करना चाहिये और पुद्गल परमाणु का ग्रहण न करना चाहिये और “गुरु” शरीर यहाँ पर “गुरु” शब्द से एक हजार योजन परिमाण जो महामत्त्य का शरीर है, उसको ग्रहण करना चाहिये और मध्यम अवगाहना से मध्यम शरीरों का ग्रहण है।



कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हर्ता ?!

2

विश्व अकृत्रिम, शाश्वतिक : वैज्ञानिक समीक्षा

लोक किसी परमात्मा के द्वारा रचित (सृष्टि) किया गया है, ऐसी मान्यता जैन दर्शन में नहीं है। लोक माया स्वरूप भी नहीं है। जगत् में केवल ब्रह्म सत्य है एवं जगत् मिथ्या है इस प्रकार की मान्यता को भी जैन दर्शन में स्थान नहीं है। जगत् की प्रत्येक क्रिया ईश्वराधीन है इस प्रकार की मान्यता को भी जैन दर्शन में स्थान नहीं है। जगत् की प्रत्येक क्रिया ईश्वराधीन है इस प्रकार पराधीनता का शासन भी नहीं है। जगत् ब्रह्म के द्वारा सृष्टि, विष्णु के द्वारा पालित एवं रुद्र के द्वारा संहारित होता है, इस प्रकार के परकर्तृत्व को भी यहाँ आश्रय नहीं दिया है। जगत् की किसी कल्पकाल में सृष्टि हुई, ऐसी भी मान्यता नहीं है। असत् से सत् उत्पादन की मान्यता की धृष्टता भी जैन शासन में नहीं है। केवल जगत् जड़ स्वरूप है, इस प्रकार अविचारित चारवाक् का प्रश्रय भी नहीं है। लोक, क्षेत्र दृष्टि से अनन्त है, इस प्रकार की मान्यता भी नहीं है।

लोगों अकिञ्चित्मो खलु अणाइणिहणो सहावणिव्वतो ।

जीवाजीवेहि फूडो सव्वागास अवयवो णिच्चो ॥त्रिसा.

निश्चय से लोक अकृत्रिम, अनादिनिधन, स्वभाव से निष्पन्न, जीवाजीवादि द्रव्यों से सहित, सर्वाकाश अवयव स्वरूप और नित्य है।

जैनाचार्य द्वारा प्रणीत प्रत्येक सूत्र एवं प्रत्येक शब्द अत्यन्त गम्भीर अर्थ लिये हुए होते हैं। वे एक ही शब्द में सत् का निरूपण एवं असत् का निराकरण भी कर देते हैं। उपरोक्त गाथा में लोक के जो 6 विशेषण दिये गए हैं उसमें लोक के सम्यक् स्वरूप का वर्णन एवं असम्यक् लोक का निराकरण भी किया गया है। प्रकरण प्राप्त लोक का वर्णन होने पर भी यहाँ जो ‘लोग’ शब्द को ग्रहण किया है उससे लोक की सिद्धि एवं शून्यवादी का निराकरण भी किया गया है अर्थात् वास्तविक सत् स्वरूप लोक है, लोक शून्य स्वरूप नहीं है। जो वस्तु अन्य के द्वारा बनायी नहीं जाती उसको प्राकृतिक अथवा अकृतिम कहते हैं। इसी प्रकार लोक भी अकृत्रिम अर्थात् ईश्वर के द्वारा बनाया गया नहीं है। जिसका आदि होता है उसका अन्त भी होता है; जिसका एक पाश्व होता है उसका अन्य पाश्व भी होता है। जो वस्तु किसी के द्वारा नहीं बनायी जाती है वह वस्तु अन्य के द्वारा नाश भी नहीं होती है। इस लोक को किसी ने बनाया नहीं अतः किसी के

कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हता ?!

द्वारा उसे नष्ट भी नहीं किया जा सकता है।

जिस प्रकार ईट स्वतन्त्र रहने पर अद्वालिका नहीं बनती है, स्वतन्त्र जल बिन्दु से समुद्र नहीं बनता है, स्वतन्त्र रुई से वस्त्र नहीं बनता है, किन्तु सम्यक् ईट संयोजना से गृह, अनेक बिन्दु के संबंध से समुद्र, एवं सम्यक् रुई के बन्धन से वस्त्र बनता है, इस प्रकार बनने के पहले उस मैलिक वस्तु को करण कहते हैं और बनने के बाद उसको कार्य कहते हैं। इसी प्रकार विश्व में पहले केवल परमाणु था एवं उस परमाणु द्वारा लोक का प्रारम्भ हुआ इस प्रकार की मान्यता भी असंगत है। जिस प्रकार जादुगर अपनी माया के माध्यम से अनेक वस्तु दर्शकों को प्रदर्शित करता है किन्तु वह वस्तु माया स्वरूप है। स्वप्न में अनेक राज विभूतियों का अनुभव करते हुए देखने पर भी वह राज विभूति सत् या वास्तविक राज विभूति नहीं है। उसी प्रकार दृश्य जगत् केवल मायामय है, इस प्रकार की धारणा प्रत्यक्ष, आगम एवं तर्क विरुद्ध है। वैज्ञानिक सिद्धान्त से भी खण्डित है किन्तु लोक जीवाजीव से परिपूर्ण है। कुछ तत्त्वज्ञ, लोक को मानने पर भी लोक के बाद अलोक को नहीं मानते हैं। लोक के बाद अनन्त अलोक है एवं वह अलोक कहाँ समाप्त हुआ है? इस प्रकार की जिज्ञासा भी कुछ विचारकों के मन में आती है। जब इस विचार का समाधान अल्प ज्ञान द्वारा नहीं कर पाते हैं तब वे अलोक को ही मानना छोड़ देते हैं। वस्तुतः लोक अलोक की अपेक्षा बहुत छोटा है। इसको उदाहरण द्वारा बताना सहज नहीं है तो भी सम्यक् ज्ञान कराने के लिए एक उदाहरण दे सकते हैं। यदि विशाल गोल गुम्बज यदि अलोकाकाश रूप में मान लिया जाये तो लोकाकाश एक परमाणु स्वरूप होगा। प्रतिक्षण परिवर्तनशील विश्व को देखकर कुछ क्षणिक वादी मनाते हैं कि विश्व क्षणिक है, किन्तु विश्व पर्याय की अपेक्षा क्षणिक होने पर भी द्रव्य दृष्टि से नित्य है।

भावस्स णत्य णासो णत्य अभावस्स चेव उप्पादो।

गुण पञ्जयेसु भावा उप्पादवए पकुवंति ॥(पंचास्तिकाय)

भाव का अर्थात् सत् द्रव्य का, द्रव्यरूप से विनाश नहीं होता है। अभाव का अर्थात् असत् द्रव्य कभी सत् द्रव्यरूप में उत्पन्न नहीं होता है। इस प्रकार सत् का उच्छेद तथा असत् का अभाव का भाव रूप से नहीं होता है किन्तु गुण पर्याय में विनाश उत्पाद होता है, क्योंकि द्रव्य का स्वरूप ही उत्पाद व्यय धौव्यात्मक है।

“उत्पादव्ययधौव्य युक्तं सत्” (त.सू.)

सत् उत्पादव्यय धौव्य स्वरूप है अर्थात् सत् का स्वभाव उत्पाद-व्यय-धौव्य

कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हता ?!

रूप है। उत्पाद का अर्थ नूतन पर्याय प्राप्त करना है। व्यय का अर्थ पूर्व पर्याय का नाश है। धौव्य का अर्थ उत्पाद व्ययके मध्य रहने वाले द्रव्य की नित्यता है।

उत्पाद, व्यय, धौव्य में परस्पर अविनाभाव संबंध होने से यहाँ ‘युक्त’ शब्द का प्रयोग किया गया है अथवा यह युक्त संबंधवाची है। भाव यह है कि युक्त समाहित और तदात्मक एकार्थवाची शब्द है, जिससे “सत् उत्पाद-व्यय-धौव्य से युक्त है” इसका भाव सत्-उत्पाद-व्यय और धौव्यात्मक है ऐसा सिद्ध होता है। उक्त कथन का तात्पर्य यह है कि उत्पादादि द्रव्य के लक्षण हैं और द्रव्य लक्ष्य है यदि इनका पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा विचार करते हैं तो यह परस्पर में द्रव्य से पृथक्-2 है और यदि द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा विचार करते हैं तो ये पृथक्-2 उपलब्ध नहीं होने से अभिन्न हैं। इसी प्रकार इनमें और द्रव्य में लक्ष्य लक्षण भाव की सिद्धि होती है।

न सर्वथा नित्यमुदैत्यपैति न च क्रियाकारकमत्र युक्तम्।

नैवासतो जन्म सतो न नाशोदीपस्तमः पुद्गल भावतोऽस्ति ॥

(स्वयंभूतोत्र)

सर्वप्रकार से वस्तु नित्य ही है, एकरूप ही रनहे वाली है, ऐसा एकांत मान लेने से उनमें कोई नूतन अवरथा प्रकट नहीं हो सकती है, न ही प्राचीन अवरथा का नाश ही हो सकता है। यदि वस्तु में क्रिया एवं कारक होंगे तो उत्पाद-व्यय स्वभावतः होना ही चाहिए। परन्तु सर्वथा नित्य मानने से किसी प्रकार की शुद्ध अथवा अशुद्ध रूप क्रिया नहीं हो सकती है तथा कर्ता, कर्म, कारण आदि कारक की भी सिद्धि नहीं हो सकती है। जो जैसा है वह जैसा ही कूटस्थ नित्य ही रहेगा। क्रिया कारकत्व तो द्रव्य का स्वभाव हैं। यह स्वभाव ही नहीं रह सकेगा, तो स्वभाव के अभाव से द्रव्य का अभाव हो जायेगा। जो सोया है वह सोया ही रहेगा, जो जागता है वह जागता ही रहेगा, जो खाता है वह खाता ही रहेगा, जो पीता है वह पीता ही रहेगा। इस प्रकार सर्वथा नित्य मानने से दोष आता है। उसीप्रकार सर्वथा अनित्य एवं क्षणिक मानने से भी क्रिया कारकत्व सिद्ध नहीं होगा। जो वस्तु स्वरूप से आकाश कुसुम के समान या वर्ध्यापुत्र के समान असत् है, उसका जन्म भी नहीं हो सकता है। जो सत् पदार्थ है उसका सर्वथा अभाव नहीं हो सकता है। कुछ सामान्य व्यक्ति दीपक बुझ जाने के बाद उसका सर्वथा नाश हुआ मानते हैं किन्तु वास्तविक दीपक के प्रकाश स्वरूप पुद्गल पर्याय के नाश से अंधकार रूप पुद्गल पर्याय की उत्पत्ति हुई है। प्रकाश एवं अंधकार दोनों पुद्गल की पर्याय

कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हर्ता ?!

ही है। प्रकाश पर्याय की अवस्था में जो पुद्गल था वही निमित्त पाकर अंधकाररूप पर्याय में परिणमन कर गया। वस्तुतः पुद्गल द्रव्य का नाश नहीं हुआ केवल पर्याय का परिणमन हुआ है। जैसे जल के गर्म करने से जल की शीतलूप पर्याय नष्ट हो जाती है एवं ऊष्ण पर्याय की उत्पत्ति होती है। अधिक गर्म करने पर जल वाष्प रूप पर्याय को प्राप्त होता है। वाष्प होने पर पात्र का संपूर्ण जल विलय होने पर भी जल में मौजूद अणु नष्ट नहीं हुए। वह अणु वाष्परूप में वर्तमान में विद्यमान है। जैसे एक छोटा सा बालक 20 वर्ष में युवक अवस्था को प्राप्त हो जाता है, 100 वर्ष में वृद्ध अवस्था को प्राप्त हो जाता है। अवस्था तीन होने पर भी जीव एक ही है। जैसे एक जीव की मनुष्य रूप पर्याय नष्ट हुई एवं देवरूपी पर्याय प्राप्त हुई अतः गति भिन्न होने पर भी जीव एक ही है। इसीप्रकार विश्व का समस्त सूक्ष्म, स्थूल, दृश्यमान, अदृश्यमान, शुद्ध, अशुद्ध परिणमन उस द्रव्य को छोड़कर नहीं होता है अर्थात् सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय स्वभाव से द्रव्य में ही होता है। संपूर्ण विश्व सत् स्वरूप में एक अभेद अविनाशी अनन्त गुण पर्यायात्मक एवं प्रतिपक्ष सहित है।

सत्ता सत्त्वपर्यात्था सविस्तरलवा अण्णतपञ्जाया।
भंगुप्पादधुवत्ता सप्पडिवकखा हवदि एक्का ॥(8)

(पञ्चास्तिकाय)

जो अस्तित्व है तो सत्ता है। जो सर्वथा क्षणिक एवं नित्य है वह वस्तु नहीं हो सकती है। जो सत्ता को लिए हुए है वही वस्तु है। वस्तु नित्यानित्य स्वरूप है। यदि वस्तु को सर्वथा नित्य ही माना जाये तो सत्ता का नाश हो जायेगा क्योंकि नित्य वस्तु में क्षणवर्ती पर्याय के अभाव से परिणाम का अभाव हो जायेगा। परिणाम के अभाव से वस्तु का अभाव हो जायेगा। वस्तु में जितना कुछ विस्तार है, तो भी सत्ता में गर्भित है। वस्तु ही विश्वरूप को (संपूर्णरूप) धारण करती है। पर्यायों के जो अनन्त भेद हैं वे सब भी इस सत्ता में ही अन्वय होते हैं। उत्पाद-व्यय-धौव्य भी सत्ता में होता है।

सामान्यरूप सत्ता, विशेष सत्ता की अपेक्षा प्रतिपक्ष लिये हुए है। प्रत्येक वस्तु में प्रतिपक्ष गुण न रहने से वस्तु निरंकुश हो जायेगी। निरंकुश होना वस्तु का स्वरूप नहीं है। निरंकुश होने से वस्तु का लोप हो जायेगा। सत्ता असत्ता का प्रतिपक्षी, अविलक्षणत्व विलक्षण का प्रतिपक्षी, अनेकांत एकान्त का प्रतिपक्षी है। इसीप्रकार प्रत्येक गुण, पर्याय, द्रव्यादि समस्त प्रतिपक्ष सहित है। सामान्य रूप से सामान्य

स्वरूप, सत्ता विशेषता की अपेक्षा से प्रतिपक्ष होने के कारण सत्ता दो प्रकार की है, अर्थात् महासत्ता और अवान्तर सत्ता। जो सत्ता, उत्पाद-व्यय धौव्यरूप विलक्षण संयुक्त है तथा समस्त पदार्थों में रहती है, समस्त रूप है और अनन्त पर्यात्मक है, वही महासत्ता है और जो इसकी ही प्रतिपक्षी है वही अवान्तर सत्ता है। यह महासत्ता की अपेक्षा असत्ता है। इसमें उत्पादादि तीन लक्षण गर्भित नहीं है। यह अनेक है, एक पदार्थ में रहती है, एक स्वरूप है, एक पर्यायात्मक है, इस प्रकार प्रतिपक्षी अवान्तर सत्ता जानना चाहिए। इन दोनों में से जो समस्त पदार्थों में सामान्यरूप से व्याप्त रही है वह तो महासत्ता है। इससे भिन्न अवान्तर सत्ता कहते हैं। महासत्ता अवान्तर सत्ता की अपेक्षा से असत्ता है। अवान्तर सत्ता महासत्ताकी अपेक्षा असत्ता है। इसी कारण से कथंचित् सत्ता की असत्ता है। उत्पादादि तीन लक्षण से जो संयुक्त सत्ता है वही तीन लक्षण संयुक्त नहीं है। क्योंकि जिस स्वरूप से उत्पाद है, उस स्वरूप से उत्पाद ही है। जिस स्वरूप से व्यय है उस स्वरूप से व्यय है। जिस स्वरूप से धौव्यता है उस स्वरूप से धौव्य ही है। इसी कारण से उत्पाद व्यय धौव्य वस्तु के स्वरूप हैं। उनमें एक एक स्वरूप के उत्पादादि तीन लक्षण नहीं होते। इसी कारण तीन लक्षण रूप सत्ता के तीन लक्षण नहीं है। और उस ही महासत्ता के अनेक भी हैं एक भी है। क्योंकि निज-निज में जो सत्ता है उससे पदार्थ का निश्चय होता है, इसी कारण सर्वव्यापी महासत्ता निज-निज एक-एक पदार्थ की अपेक्षा से एक-एक पदार्थ में रहता है। अतः अनेक महासत्ता सकल स्वरूप हैं वही एक रूप है। इसी कारण सकल स्वरूप सत्ता को एक रूप कहा जाता है। जो महासत्ता अनन्त पर्यायात्मक है उसको एक पर्याय स्वरूप कहते हैं। क्योंकि अपने अपने पर्यायों की अपेक्षा से द्रव्यों की अनन्त सत्ता है। एक द्रव्य को निश्चित पर्याय की अपेक्षा से एक पर्याय रूप कहा जाता है। इसी कारण अनन्त पर्याय स्वरूप सत्ता को एक पर्याय स्वरूप कहते हैं। यह जो सत्ता का स्वरूप है उसमें कोई विरोध नहीं है। क्योंकि भगवान का उपदेश सामान्य है। विशेष रूप में दो नयों के आधीन है, इसीलिए महासत्ता और अवान्तर सत्ता में कोई विरोध नहीं है।

तत्व सल्लाक्षणिकं सन्मात्रं वा यतः स्वतः सिद्धम्।
तरमादनादि निधनं स्वसहायं निर्विकल्पञ्च ॥(पंचाद्यायी)

तत्व अर्थात् वस्तु सत् लक्षण वाली है अथवा सत् स्वरूप ही वस्तु है! वस्तु में जो अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, प्रदेशत्व आदि अनन्त गुण हैं उनमें से अस्तित्व गुण का नाम सत् है। सत् कहने से अस्तित्व गुण का ग्रहण होना चाहिए परन्तु

कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हर्ता ?!

सत् कहने से सम्पूर्ण वस्तु का ग्रहण होता है। क्योंकि ‘एक गुणमुखेनाऽशेषवस्तु कथन प्रमाणाधीनमिति वचनात्’ अर्थात् एक गुण के वर्णन के माध्यम से सम्पूर्ण वस्तु का कथन करना प्रमाण वचन है। इसका कारण यह है कि अस्तित्व आदि गुण अभिन्न है। अभिन्नता के कारण ही सत् के कहने से सम्पूर्ण गुण समुदाय रूप वस्तु का ग्रहण हो जाता है। इससे सिद्ध होता है कि वस्तु कभी भी असत् नहीं थी एवं असत् से सत् भी उत्पन्न नहीं हुआ। यह विज्ञान सिद्धान्त है। अतः उपनिषदों में वर्णित असत् से जगत् की उत्पत्ति (सृष्टि) नहीं हो सकती है। छान्दोग्य उपनिषद के अनुसार सर्व प्रथम असत् था। असत् से सत् की उत्पत्ति हुई सत् से अण्डे की उत्पत्ति हुई। जिसका एक वर्ष बाद पूर्णता को प्राप्त होकर विस्फोट हुआ, फल स्वरूप एक अंश सुवर्ण रूप एवं अन्य एक भाग रोप्य (चांदी) रूप में परिणमित हुआ। सुवर्ण भाग से आकाश की सृष्टि हुई, रोप्यभान से भूमि की सृष्टि हुई, रस भाग से समुद्र की सृष्टि हुई, रक्तवाहिनि अंश से नदियों की सृष्टि हुई, मोटे भाग से पर्वतों की सृष्टि हुई, पतले भाग से मेघों की सृष्टि हुई। हठात् एक अंश बाहर निकल सूर्य रूप में परिणमित हुआ। इस प्रकार असत् से सत् की उत्पत्ति होती है। यदि ऐसा है तो फूल के लिये बगीचे की, तेल के लिये तिलों की, सन्तान के लिये माता-पिता की क्यों आवश्यकता होती है?

तत्व स्वतः सिद्ध है, इसलिए अनादि निधन है। प्रत्येक वस्तु में अवश्य परिणमन होता है। उस परिणमन में वस्तु अपने आप ही स्वयोग्यता के अनुसार स्वभाव से उपादान रूप से परिणमन करती है। प्रत्येक वस्तु अनन्त गुणों का पिण्ड होने के कारण निर्विकल्प अर्थात् वचनातीत है। यदि वस्तु में उपरोक्त स्वभाव को नहीं मानेंगे तो अनेक दोष-उत्पत्ति की धारा को कोई भी रोक नहीं सकता है।

इत्थं नो चेदसत् प्रादुर्भूतिर्निरङ्कुशा भवति ।

परतः प्रादुर्भावो युतिसिद्धत्वं सतो विनाशो वा ॥

पञ्चाध्यायी(9)

वस्तु का उपरोक्त स्वरूप नहीं मानने पर असत् पदार्थ भी सत् होने लगेगा। जब वस्तु को सत् स्वरूप और स्वतः सिद्ध माना जाता है जब असत् की उत्पत्ति नहीं बन सकती है। ऐसा न मानने पर यह दोष बिना किसी अंकुश के प्रबलता से उपस्थित हो जायेगा। इसी प्रकार होने पर प्रत्येक क्षण असत् जीव, असत् पुद्गल, असत् जगत् की सृष्टि होने से जगत् में समावेश ही नहीं हो सकेगा। एक विश्व, अन्य विश्व में जाकर उपनिवेश करने लगेगा। यदि नितान्त असत् पदार्थ की उत्पत्ति

कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हर्ता ?!

मानी जाय तो और अनेक दोष उत्पन्न होंगे।

असतः प्रादुर्भाव द्रव्याणामिह भवेदनन्तत्वम् ।

को वारयितुं शक्तः कुम्भोत्पतिमृदादाभावेऽपि ॥ पञ्चाध्यायी ॥ (10)

यदि उन दोषों को स्वीकार किया जाय तो, और कौन-कौन दोष आते हैं, यह बतलाया जाता है— यदि असत् की उत्पत्ति मान ली जाय, अर्थात् जो वस्तु पहले किसी भी रूप में नहीं है और न उसके परमाणुओं की सत्ता ही है ऐसी वस्तु की उत्पत्ति मानने से वस्तुओं की कोई इयत्ता (मर्यादा) नहीं रह सकती है। जब बिना, अपनी सत्ता के ही, नवीन रूप से उत्पत्ति होने लगेगी तो संसार में अनन्त-अनन्त द्रव्य होते चले जायेंगे। ऐसी अवस्था में बिना मिट्टी के ही घड़ा बनने लगेगा; इसको कौन रोक सकेगा? अर्थात् कोई नहीं। असत् की उत्पत्ति मानने से वस्तुओं में जो वैज्ञानिक कार्यकारण भाव है वह भाव नहीं रहेगा। कार्य-कारण भाव के नहीं रहने पर कोई भी वस्तु किसी भी वस्तु से उत्पन्न हो जायेगी, आकाश भी पिघल कर बरसने लगेगा। सुवर्ण परिवर्तित होते-होते एक दिन मिट्टी स्वरूप हो सकता है एवं मिट्टी भी परिवर्तित होते-होते वायु स्वरूप हो सकती है किन्तु असत् से सत्, चेतन से अचेतन, अमूर्तिक से मूर्तिक, किसी भी क्षेत्र में, किसी भी काल में, किसी भी प्रकार से उत्पन्न नहीं हो सकता है। सुवर्ण, मिट्टी एवं वायु एक ही पुद्गल की पर्याय होने से सुवर्ण परिवर्तित होकर के मिट्टी एवं वायु हो सकता है परन्तु सर्वथा भिन्न वस्तु स्वरूप चेतन से अचेतन तथा मूर्तिक से अमूर्तिक की सृष्टि नहीं हो सकती है। इससे सिद्ध हुआ कि चेतन स्वरूप परमब्रह्म से चेतनाचेतनात्मक जगत् की सृष्टि नहीं हो सकती है एवं शून्य से भी अर्थात् असत् से भी जगत् की सृष्टि नहीं हो सकती है।

कोई एक स्वतन्त्र वस्तु, अन्य कोई एक स्वतन्त्र वस्तु से भी उत्पन्न नहीं हो सकती है। यदि स्वतन्त्र वस्तु से उत्पन्न मानेंगे तो निम्न प्रकारसे दोष उत्पन्न होंगे।

परतः सिद्धत्वे स्यादनवस्थालक्षणो महान् दोषः ।

सोऽपि परः परतः स्यादन्व्यस्थादिति यतश्च सोदि परः ॥

(पञ्चाध्यायी) (11)

वस्तु को पर से सिद्ध मानने पर अनवस्था नाम का दोष आता है। अप्रमाणिकाऽनन्त पदार्थ कल्पनयाविश्वान्तिरनवस्था। अप्रमाण रूप अनन्त पदार्थों की उत्तरोत्तर कल्पना करते चले जाने का नाम अनवस्था दोष है। यह दोष पदार्थ

कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हता ?

सिद्धि से सर्वथा बाधक है। एक पदार्थ की उत्पत्ति दूसरे पदार्थ से, दूसरे पदार्थ की उत्पत्ति तीसरे पदार्थ से, तीसरे पदार्थ की उत्पत्ति चौथे पदार्थ से, चौथे पदार्थ की उत्पत्ति पांचवें पदार्थ से, इस प्रकार संख्यात, असंख्यात, अनन्त पदार्थ तक कल्पना करते जाइये किन्तु उस कल्पना का कभी अन्त नहीं होगा। जहाँ उस कल्पना का अन्त होगा वहाँ पुनः प्रश्न खड़ा होगा कि यह कहाँ से उत्पन्न हुआ? उसके लिए पुनः दूसरे पदार्थ की आवश्यकता होगी। इसी प्रकार कहाँ भी उस कल्पना का वास्तविक साधन एवं विश्रांति नहीं होगी। इसी प्रकार जब पृथ्वी से जल की सृष्टि हुई, जल से तेज, तेज से वायु, वायु से आकाश, आकाश से ब्रह्म की से सृष्टि हुई। पुनः प्रश्न होता है कि ब्रह्म की सृष्टि किससे हुई? उसका उत्तर-ब्रह्म अनादि निधन है। उसकी न उत्पत्ति होती है न नाश होता है। तब अन्य द्रव्य को भी अनादि निधन मानने में अर्थात् स्वतः सिद्ध द्रव्य मानने में भी दोष क्या है? दोष के परिवर्तन में गुण ही दिखाई देता है। वर्तमान वैज्ञानिकों की अपेक्षा भी यह सिद्धान्त मान्य है। 'No' thing can be created, no, thing can be destroyed but the form only changes. सत् वस्तु का नाश नहीं होता है, असत् वस्तु की उत्पत्ति नहीं होती है, किन्तु द्रव्य में परिवर्तन ही होता रहता है। प्रत्येक सत् वस्तु किसी न किसी सत् वस्तु से उत्पन्न होती है। जिस एक वस्तु में दूसरी वस्तु उत्पन्न होती है उसे द्रव्य कहते हैं। गुण और द्रव्यों का समुच्चय जगत है। यह जगत कार्य कारण की सतत परंपरा है। प्रत्येक वस्तु या घटना अपने पूर्ववर्ती वस्तु या घटना का कार्य होती है तथा आगे की घटनाओं का कारण प्रत्येक घटना कार्य-कारण भाव की अनादि एवं अनन्त माला (मोती) का एक मनका है। कार्य कारण भाव के विशिष्ट नियम से प्रत्येक घटना एक दूसरे के साथ बँधी रहती है। ज्ञाता और ज्ञेय अथवा सत् वस्तु नित्य परिवर्तनशील है। वस्तुओं का स्थान बदलता रहता है। उनके घटक बदलते हैं एवं गुण धर्म बदलते रहते हैं किन्तु परिवर्तन का अखण्ड प्रवाह चालू है।

प्रत्येक वस्तु में स्वभावसिद्धि, गति, शक्ति या परिवर्तन शक्ति अवश्य रहती है। अणुरूप द्रव्यों का जगत् बना रहता है। उन अणुओं का आपस में मिलना तथा एक दूसरे से अलग-2 होने के लिए जो गति मिलती रहती है वह उसका स्वभाव धर्म है। उनको परिचालन करने वाला, इकट्ठा करने वाला, अलग-2 करने वाला अन्य कोई नहीं है। इस विश्व में जो प्रेरणा या गति है वह वस्तु

कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हता?

मात्र के स्वभाव से निर्मित होती है। एक के बाद दूसरी की गति अनादि परंपरा इस विश्व में विद्यमान है। यह प्रश्न ठीक नहीं है कि प्रारम्भ में इस विश्व में किसने गति उत्पन्न की। प्रारम्भ में शब्दों का अभिप्राय उस कल से है जब गति नहीं थी अर्थात् किसी प्रकार का कोई परिवर्तन नहीं था। ऐसे काल की तर्क संगत कोई कल्पना नहीं की जा सकती, जब किसी प्रकारका परिवर्तन न रहा हो, ऐसे काल की कल्पना करने का अर्थ यह हुआ कि कोई भी वस्तु थी। यदि कोई वस्तु थी तो निश्चित ही कार्य कारण भाव से बँधी रही है अर्थात् इसीलिए गति, परिवर्तन सहित थी। क्योंकि सर्वत्र गति परिवर्तन से रहित स्थिति में से कुछ भी उत्पन्न नहीं हो सकता। प्रत्येक वस्तु की घटना में दो प्रकार का परिवर्तन होता है (1) एक तो यह है कि वस्तु में स्वभाविक रूप से परिवर्तन होता है (2) दूसरा यह है कि वस्तु का उसके चारों ओर की परिस्थितियों का प्रभाव पड़ने से परिवर्तन होता है।

प्रत्येक वस्तु दुसरी वस्तु से जुड़ी या संलग्न रहती है। यह संलग्नता तीन प्रकार की होती है। एक वस्तु का चारों तरफ की वस्तुओं से संबंध रहता है। दूसरी वस्तु जिस वस्तु से उत्पन्न हुई है उनके कार्य-कारण भाव से जुड़ी रहती है। तीसरी उस वस्तु के घटना के गर्भ में दूसरी घटना रहती है। और वह तीसरी घटना के गर्भ में रहती है। जो वस्तु सर्व संबंध है उसकी ठीक से जानकारी होने पर यह भ्रांति, आशंका दूर हो जाती है कि वस्तुओं की गति किंवा क्रिया के लिए कोई पहला प्रवर्तक चाहिए। कोई भी क्रिया पहले नहीं हो सकती। प्रत्येक गति से या क्रिया से पूर्व दूसरी गति या क्रिया रहती है। इस क्रिया का स्वरूप एक स्थान से दूसरे स्थान में जाना ही नहीं होता। क्रिया, शक्ति का केवल स्थान्तरित होना या चलायमान होना ही स्वरूप नहीं है। बीजसे अंकुर बनता है और अंकुर से वृक्ष बन जाता है। आक्सीजन और हाइड्रोजन मिलकर पानी बन जाता है। प्रकाश से अणु अथवा लहरें बनती हैं। ये घटनाएँ भी क्रिया ही हैं। इस प्रकार की क्रिया वस्तुका मूल स्वभाव है। वह यदि न रहे तो जो पहली बार गति देता है उसके लिए भी वस्तु में गति उत्पन्न करना सम्भव नहीं हो सकता। विश्व स्वयं प्रेरित है उसे किसी बाह्य प्रेरक की आवश्यकता नहीं है।

रचना, योजना, व्यवस्था, नियमबद्धता अथवा सुसंगति वस्तु का मूलभूत स्वभाव है। हम जब भी किसी वस्तु का वर्णन करते हैं तो वह व्यवस्था का ही होता है। यदि वस्तु में योजना या व्यवस्था नहीं हो तो इसका अर्थ यह हुआ कि

कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हर्ता?

वस्तु ही नहीं है। वस्तु है इस कथन का यह अर्थ निकलता है कि एक विशेष प्रकार की योजना और विशेष प्रकार की व्यवस्था है। वस्तु की योजना का आकलन होना ही वस्तु स्वरूप का आकलन है। विश्व की रचना अभाव योजना किसी दूसरे ने नहीं की है। अग्नि की ऊष्णता या जलना स्वाभाविक धर्म है। यह एक व्यवस्था / योजना है। यह व्यवस्था या योजना ऊष्णता के अस्तित्व का ही एक पहलू है। संख्या, परिणाम एवं कार्य-कारण भाव वस्तु के अंग हैं। हम संख्या, वस्तु स्वरूप में उत्पन्न नहीं कर सकते। वह वस्तु में रहती ही है। वस्तुओं के कार्य कारण भाव को पहचाना जा सकता है किन्तु निर्माण नहीं किया जा सकता है। सत्य पाया जाता है बनाया नहीं जाता।

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने अपनी वैज्ञानिक भौतिकवाद पुस्तक में भौतिकवाद के आधुनिक स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए कहा— ‘‘जगत् का प्रत्येक परिवर्तन जिन सीढ़ियों से गुजरता है वे सीढ़ियां वैज्ञानिक भौतिकवाद की त्रिपुटी है—’’ (1) विरोधी समागम (2) गुणात्मक परिवर्तन और (3) प्रतिषेध का प्रतिषेध। वस्तु के उदर में विरोधी प्रवृत्तियाँ जमा होती हैं, इससे परिवर्तन के लिए सबसे आवश्यक चीज गति पैदा होती है। फिर हेगेल की छन्दवादी प्रक्रिया के बाद और प्रतिवादी के संघर्ष से नया युग पैदा होता है। इसे दूसरी सीढ़ी का गुणात्मक परिवर्तन कहते हैं। पहले जो बाद था उसको भी उसकी पूर्वगामी कड़ी में मिलाने पर वह किसी का प्रतिषेध हुआ तो यह प्रतिषेध का प्रतिषेध है। दो या अधिक एक दूसरे से गुण और स्वभाव में विरोधी वस्तुओं का समागम दुनिया में पाया जाता है। यह बात हर एक आदमी को जब तब नजर आती है किन्तु उसे देखकर यह ख्याल नहीं आता कि एक बार विरोधी समागम को मान लेने के बाद फिर विश्व के संचालक ईश्वर की जरूरत नहीं रहती। न किसी अभौतिक दिव्य रहस्यमय नियम की आवश्यकता है। विश्व के रोम-रोम में गति है। जो विरोधी शक्तियों का मिलना ही गति पैदा करने के लिए पर्याप्त है। गति का नाम विकास है। लेनिन के शब्दों में ‘‘विकास विरोधियों के संघर्ष का नाम है।’’ विरोधी जब मिलेंगे तब संघर्ष जरूर होगा। संघर्ष नये स्वरूप, नई गति, नई परिस्थिति अर्थात् विकास को जरूर पैदा करेगा। यह बात साफ है कि विरोधियों के समागम को परस्पर अन्तर व्यापन या एकता कहते हैं। जिसका अर्थ यह है कि वे एक ही (अभिन्न) वास्तविकता के दोनों प्रकार के पहलू होते हैं। यह दोनों विरोध

कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हर्ता?

दार्शनिकों को परमार्थ की तराजू पर तुले सनातन काल से एक दूसरे से सर्वथा अलग अवस्थित भिन्न-भिन्न तत्व के तौर पर नहीं रहते बल्कि यह वस्तु रूपेण एक है— एक ही समय, एक ही स्थान पर अभिन्न होकर रहते हैं। जो कर्जखोर के लिए ऋण है, वहीं महाजन के लिये धन है। हमारे लिए जो पूर्व का रास्ता है, वही दूसरे के लिए पश्चिम का रास्ता है। बिजली में धन और ऋण के छोर दो अलग स्वतन्त्र तरल पदार्थ नहीं हैं। लेनिन ने विरोध के छन्दवाद का सार कहा है।

केवल परिणामात्मक परिवर्तन ही एक खास सीमा पार होने पर गुणात्मक भेदों में बदल जाता है।

कर्नल इअरसोल प्रसिद्ध विचारक और निरीश्वरवादी थे। वे अपने व्याख्यान में लिखते हैं कि ‘‘मेरा एक सिद्धान्त है और उसके चारों कोनों पर रखने के लिए मेरे पास चार पथर हैं। पहला शिलान्यास है कि पदार्थ रूप नष्ट नहीं हो सकता, अभाव को प्राप्त नहीं हो सकता। दूसरा शिलान्यास है कि गति-शक्ति का विनाश नहीं हो सकता, वह अभाव को प्राप्त नहीं हो सकती।’’ तीसरा शिलान्यास है कि पदार्थ और गति पृथक्-2 नहीं हो सकती। बिना गतिके पदार्थ नहीं और बिना पदार्थ के गति नहीं। चौथा शिलान्यास है कि जिसका नाश नहीं, वह कभी पैदा भी नहीं हुआ होगा, जो अविनाशी है वह अनुत्पन्न है। यदि ये चारों बाते पदार्थ हैं तो उनका यह परिणाम अवश्य निकलता है कि पदार्थ और गति सदा एक हैं और सदा रहेंगे। वे न बढ़ सकते हैं और न घट सकते हैं। इससे यह भी परिणाम निकलता है कि न कभी कोई चीज उत्पन्न हुई है न कभी उत्पन्न हो सकती है, न कभी कोई रचियता हुआ है और न हो सकता है। इससे यह भी परिणाम निकलता है कि पदार्थ और गति से पीछे न कोई योजना हो सकती है और न कोई बुद्धि। बिना गति के बुद्धि नहीं हो सकती। बिना पदार्थ के गति नहीं हो सकती। इसीलिए पदार्थ से पहले अन्य किसी भी पदार्थ की, किसी बुद्धि की, किसी गति की संभावना हो ही नहीं सकती। इससे यह परिणाम निकलता है कि प्रकृति से परे न कुछ है ओर न हो सकता है। यदि ये चारों शिलान्यास यथार्थ बाते हैं तो प्रकृति का कोई स्वामी नहीं है। यदि पदार्थ गति अनादिकाल से अनंतकाल तक है तो यह अनिवार्य परिणाम निकलता है कि कोई परमात्मा नहीं जो प्रार्थनायें सुनता हो। दूसरे शब्दों में यह सिद्ध होता है कि आदमी को भगवान् से कोई सहायता नहीं मिली तमाम प्रार्थनायें अनंत आकाश में यूँ ही

कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हर्ता ?

विलीन हो गयी। यदि पदार्थ और गति सदा से चली आयी है तो इसका यह मतलब है कि जो संभव था वह हुआ है, जो संभव है वह हो रहा है, और जो संभव होगा वही होगा। विश्व में कोई भी बात यूँ ही अचानक नहीं होती। हर घटना जनित होती है। जो नहीं हुआ वह हो ही नहीं सकता था। वर्तमान तमाम भूत का अवश्यम्भावी परिणाम है और भविष्य का अवश्यम्भावी कारण है। यदि पदार्थ और गति सदा से हैं तो हम कह सकते हैं कि आदमी का कोई चेतन रचियता नहीं हुआ है। आदमी किसी की विशेष रचना नहीं है। यदि हम कुछ जानते हैं तो यह जानते हैं कि उस दैवी कुम्हार ने / उस ब्रह्म ने कभी मिट्टी और पानी मिलाकर स्त्रियों की रचना नहीं की और न उनमें जान पूँकी।

समीक्षा और समन्वय— भौतिकवाद के उक्त मूल सिद्धान्तों के विवेचन से निम्न लिखित बातें फलित होती हैं।

1. विश्व अनंत, स्वतन्त्र, भौतिक पदार्थों का समुदाय है।
2. प्रत्येक मौलिक में विरोधी शक्तियों का समागम है, जिसके कारण उनमें स्वभावतः गति या परिवर्तन होता रहता है।
3. विश्व की रचना, योजना और व्यवस्था उसके अपने निजी स्वभाव के कारण है। किसी के नियन्त्रण से नहीं।
4. किसी सत् का सर्वथा विनाश नहीं होता असत् की उत्पत्ति नहीं होती।
5. जगत् का प्रत्येक अणु-परमाणु प्रतिक्षण गतिशील अर्थात् परिवर्तनशील है। ये परिवर्तन परिमाणात्मक भी होते हैं और गुणात्मक भी।
6. प्रत्येक वस्तु में सैकड़ों शक्तियों का समागम है।
7. जगत् के परिणाम अनादि अनंत है।

कर्ता अकर्ता — जीव कर्ता है क्योंकि शुभाशुभ कर्मों का भोक्ता है। जो कर्ता होता है वही भोक्ता होता है। शुभाशुभ कर्मों का कर्ता होने के कारण जीव स्वयं अपने प्रपंच का कर्ता है। प्रपंच का कर्ता होने के कारण वह प्रपंच से प्राप्त सुख, दुःख का भोक्ता स्वयं ही है। जीव स्वयं अपने संसार का कर्ता होने पर भी समस्त जीवों का एवं समस्त अजीवों का कर्ता नहीं है जैसा कि आचार्यों ने कहा है—

पुद्गल कम्मादीणं कर्ता ववहारदो दु णिछदो।

चेदण कम्मा णादा सुख्णया सुख्भावाणं ॥(8)

(द्रव्यसंग्रह)

कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हर्ता ?!

अर्थात् आत्मा व्यवहारनय की अपेक्षा ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अंतराय, वेदनीय, आयु, नाम, गोत्र रूप पुद्गल रूप कर्म का कर्ता है। निश्चय से क्रोध, मान, माया, लोभ एवं मोहादि का चेतन कर्म का कर्ता है। और शुद्धनय से शुद्ध ज्ञान दर्शन, सुख, वीर्यादि भावों का कर्ता है। अनादिकालीन मोहादिभाव संसार के कारण स्वयं के द्रव्य संसार का सृष्टि कर्ता स्वयं जीव है यह मोहादिभावों की सृष्टि शुद्ध परमात्मा में नहीं हो सकती है क्योंकि यह शुद्ध परम आत्मा का स्वरूप मोहादि परिणाम रूप नहीं है इसीलिए परमब्रह्म जगत् का कर्ता नहीं है। और जो जगत् का कर्ता है वह शुद्ध परमात्मा नहीं हो सकता है। यदि करुणामय, दयासागर, अनंतज्ञानी, परमात्मा सृष्टि के कर्ता होते तब संसार में निष्करुणा, निर्दयी, अज्ञानी जीवों की उपलब्धि नहीं होती। भगवान् दयाशील होकर भी एक को सुखी क्यों करते हैं और अन्य को दुःखी क्यों करते हैं? यदि इस प्रकार भेदभाव है तो पक्षपात है। जो पक्षपाती है वे रागी-द्वेषी हैं, जो रागी-द्वेषी हैं वे परमात्मा नहीं हो सकते हैं। यदि हम कहें कि परमात्मा जीव के कर्म के अनुसार फल देते हैं इसीलिए पक्षपात नहीं है तो भी यदि कर्म के अनुसार फल प्राप्त होता है तब परमात्मा सृष्टि का कर्ता कैसे हुआ? इतना ही नहीं ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर आदि भी जब कर्म के आधीन हैं तब वे कैसे स्वतन्त्र रूप से जगत् की सृष्टि कर सकते हैं?

ब्रह्मायेन कुलालवन्नियमितो ब्रह्माण्ड भाण्डोदरे,
विष्णुर्येन दशावतारगहने, क्षिप्तो महा संकटे ॥

रुद्रो येन कपालपाणिपुटके भिक्षाटनं कारित,
सूर्यो भाष्यति नित्यमेव गमने तरमै नमः कर्मणे ॥

(भृतहरि नीतिशतक) ॥

हमलोग देवताओं को नमस्कार करते हैं, पर वे भी दुष्ट विधि के ही आधीन हैं इसीलिए यदि हम विधाता को नमस्कार करते हैं तो वह विधाता भी स्वतन्त्रतया हमको फल देने में समर्थ नहीं है। वे कर्मानुसार ही फल देते हैं? इसलिए जब फल कर्म के अनुसार ही मिलता है तब हमें क्या मतलब देवता और विधाता से। उस कर्म को ही क्यों न नमस्कार करें? जिस पर विधाता का भी कोई वश नहीं चलता। परम ब्रह्मा जीवात्मा पर दया करके भी सुख देने में समर्थ नहीं है, पूर्वजन्म में किया हुआ सुकृत ही जीव की रक्षा करता है। विष्णु भी रक्षा करने में समर्थ नहीं है स्वयं विष्णु (श्रीरामचंद्र) की पत्नी (सीता) को भी रावण हरण

कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हर्ता ?!

करके ले गया और उसको रामचंद्र नहीं जान पाये एवं हठात् सीता का उद्धार भी नहीं कर पाये। स्वयं विष्णु (श्रीकृष्ण) को जरत् कुमार ने बाण मारा एवं उस बाण के घात से प्राण का अपहरण हुआ तो भी अपनी रक्षा नहीं कर पाये। भस्मासुर जब रुद्र को जलाने के लिए दौड़ा उस समय रुद्र भी अपनी रक्षा नहीं कर पाये और भस्मासुर को भी नष्ट नहीं कर पाये। इससे सिद्ध होता है कि अन्य कोई शक्ति है जिससे जीव की रक्षा होती है। जैसा कि भर्तृहरि ने कहा है—

वने रणे शत्रुजलाग्नि मध्ये महार्णवे पर्वत मरुतके वा ।

सुप्तं प्रगतं विषमस्थिते रक्षन्ति पुण्यानिपुराकृतानि ॥

नीतिशतक (98)

पूर्व जन्म में किया हुआ पुण्य ही पुरुष को वन में, रण में, शत्रु से धिर जाने पर, अग्नि में, जल में, महासमुद्र में, पर्वत की चोटी पर, सुप्त अवस्था में, असावधानी में, संकट काल आ जाने पर रक्षा करता है। स्वयं कृष्ण नारायण ने भी अपने मुखारविन्द से श्रीमद् भागवत् गीता में लोक का कोई कर्ता नहीं है इसप्रकार बताया है—

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभु ।

न कर्मफलं संयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥(गीता)

परमेश्वर भी भूत-प्राणियों के न कर्तापने को और न कर्मों को तथा न कर्मों के फल के सहयोग को वास्तव में रचता है किन्तु परमात्मा के सकाश (कारण) से ही प्रगति ही वर्तती है। अर्थात् गुण ही गुणों में वर्त रहे हैं।

ना दते कस्यचित् पापं न चैव सुकृतं विभुः ।

अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः ॥(गीता)

सर्वव्यापी परमात्मा न किसी के पाप कर्म को और न किसी के शुभ कर्म को भी ग्रहण करता है किन्तु माया के द्वारा ज्ञान ढका हुआ है। इससे सब जीव मोहित हो रहे हैं।

स्याद्वाद मन्त्री में आचार्य हेमचंद्र ने भी जगत् का कोई कर्ता नहीं है ऐसा बताया है एवं कर्तावाद का भी खण्डन किया है।

कर्तारित कश्चिच्छज्जगतः स चैकः स सर्वगः स स्ववशः स नित्यः ।

इमा: कुहेवाक्विडम्बना: स्युस्तेषां न येषामनुशासकरत्वम् ॥

हे नाथ! जो अप्रामाणिक लोग जगत् का कोई कर्ता है— (1) वह एक है (2)

कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हर्ता ?!

सर्वव्यापी है (3) स्वतंत्र है और (4) नित्य है, आदि दुराग्रह से परिपूर्ण सिद्धान्तों को स्वीकार करते हैं उनके आप अनुशासक नहीं हो सकते हैं।

संक्षिप्त में चैतन्य, पुद्गल से एक स्वतंत्र द्रव्य है। इसको उत्पन्न करने की कोई आवश्यकता नहीं है। यह चैतन्य द्रव्य अन्य द्रव्य से उत्पन्न नहीं हुआ है। यह एक शाश्वतिक अनादिनिधन द्रव्य है। लोक भी शाश्वत है। लोक में रहने वाले पौद्गलिक द्रव्य परिणमनशील हैं। पुद्गल द्रव्य भी अकृतिम एवं शाश्वतिक है। भौतिक सिद्धान्त का जो अत्यन्त मात्य विकासवाद का सिद्धान्त है वह भी एकान्तरूप असंपूर्ण होने के कारण सत्य सिद्धान्त नहीं है। इस सिद्धान्त में आत्मा के अस्तित्व के बारे में ज्ञान नहीं होने के कारण अपूर्ण है। एकांत पक्ष होने के कारण एवं असंपूर्ण साक्षात्कार होने के कारण असत्य है। निर्जीव वस्तु से आत्म तत्व उत्पन्न हुआ इसप्रकार मानकर आत्म तत्व का अपमान करता है। ईश्वरवादी मत के शास्त्र भ्रांतिपूर्ण हैं इसका कारण वे भगवान् को विश्व का उपादान कारण मानते हैं एवं वे असत्य से सत्य के उत्पन्न होने के बाद को पोषण करते हैं। धर्म एवं विज्ञान परस्पर अनुपूरक एवं परिपूरक रूप से कार्य करते हैं अर्थात् समन्वय से कार्य करते हैं। इस कार्य के लिए अन्य कारणान्तर की आवश्यकता नहीं होती है। जब स्वयं द्रव्य कार्य करने में समर्थ है उस समय में अन्य कर्ता की आवश्यकता ही नहीं रहती है। कविवर दौलतराम जी ने इस भाव को इस प्रकार स्पष्ट किया है।

किनहूँ न करौ न धरे को षट्द्रव्यमयी न हरे को ।

सो लोकमाँहिबिन समतादुःख सहे जीव नितभमता ॥(दृढ़दाला)

इस षट्द्रव्यमयी लोक को न किसी ने बनाया है और न किसी के द्वारा धारण किया गया है ओर न ही किसी के द्वारा नष्ट किया जा सकता है किन्तु जीव बिना समता के कारण कर्ता, धर्ता एवं हर्ता होकर संसार में परिभ्रमण करते हुए दुःख अनुभव कर रहा है। धर्म, अधर्म, आकाश, काल एवं पुद्गल अकर्ता हैं। क्योंकि शुभाशुभ कर्मों का भोक्तृत्व नहीं है। सांख्य मत जो केवल प्रकृति जड़ को कर्ता मानते हैं उसका निरसन हुआ क्योंकि जड़ में चेतन शक्ति नहीं होने के कारण वह कर्ता नहीं हो सकता है। यदि केवल प्रकृति ही कर्ता होती तो प्रकृति को ही फल भोगना पड़ता किन्तु प्रकृति जड़ होने के कारण उसमें भोक्तृत्व शक्ति नहीं है।



कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हता ?!

३ महापुराण में वर्णित प्राकृतिक, शाश्वतिक विश्व

आचार्य जिनसेन ने भी विश्व को अकृत्रिम, शाश्वतिक, परिवर्तनशील रूप से दार्शनिक, तार्किक, धार्मिक, अनुभवात्मक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण से निम्न प्रकार सिन्धु किया है—

लोक (विश्व) की परिभाषा—

लोक्यन्ते इमन्निरीक्ष्यन्ते जीवाद्यार्था सर्पयया :।

इति लोकस्य लोकत्वं निराहुस्तत्वदर्शिनः ॥(13)

आदि पु.पृ. 69

जिसमें जीवादि पदार्थ अपनी-2 पर्यायों सहित देखे जाये उसे लोक कहते हैं। तत्वों के जानकार आचार्यों ने लोक का यही स्वरूप बतलाया है।

क्षियन्ति निवसन्त्यरिमन् जीवादिद्रव्याविस्तरा :।

इति क्षेत्रं निराहुस्तं लोकमन्वर्थसंज्ञया ॥(14)

जहाँ जीवादि द्रव्यों का विस्तार निवास करता हो उसे क्षेत्र कहते हैं। सार्थक नाम होने के कारण विद्वान् लोग लोक को ही क्षेत्र कहते हैं।

विश्व अकृत्रिम, अविनाशी – जीवादि पदार्थों को अवगाह देने वाला यह लोक अकृत्रिम है— किसी का बनाया हुआ नहीं है, नित्य है, इसका सभी सर्वथा प्रलय नहीं होता, अपने आप ही बना हुआ है और अनंत आकाश के ठीक मध्य भाग में स्थित है।

सुष्टिकर्ता मानने से दोष—

सृष्टासर्ज बहिर्भूतः क्वस्थ सृजति तज्जगत् ।

निराधारश्च कूटस्थः सृष्टैनत् क्व निवेशयेत् ॥(17)

यदि यह मान लिया जाये कि इस लोक का कोई बनाने वाला है तो यह विचार करना चाहिए कि वह सृष्टि के पहले लोक की रचना करने के पूर्व सृष्टि के बाहर कहाँ रहता था ? किस जगह बैठकर लोक की रचना करता था ? यदि यह कहो कि वह आधार रहित और नित्य है तो उसने इस सृष्टि को कैसे बनाया और बनाकर कहाँ रखा ?

कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हता ?!

नैको विश्वात्मकस्यास्य जगतो घटने पदुः ।

वितनोश्च न तन्वादिमूर्तमुत्पत्तुमर्हति ॥(18)

दूसरी बात यह है कि आपने उस ईश्वर को एक तथा शरीर रहित माना है इससे भी वह सृष्टि का रचयिता नहीं हो सकता क्योंकि एक ही ईश्वर अनेक रूप संसार की रचना करने में समर्थ कैसे हो सकता है ? तथा शरीर रहित अमूर्तिक ईश्वर से मूर्तिक वस्तुओं की रचना कैसे हो सकती है ? क्योंकि लोक में यह प्रत्यक्ष देखा जाता है कि मूर्तिक वस्तुओं की रचना मूर्तिक पुरुषों द्वारा ही होती है जैसे कि मूर्तिक कुम्हार से मूर्तिक घट की रचना होती है।

कथं च स सृजेल्लोकं विनान्यैः करणादिभिः ।

तानि सृष्टा सृजेल्लोक मिति चेदनवस्थितिः ॥(19)

एकबात यह भी है— जबकि संसार के समस्त पदार्थ कारण सामग्री के बिना नहीं बनाये जा सकते तब ईश्वर उसके बिना ही लोक को कैसे बना सकेगा ? यदि यह कहो कि वह पहले कारण— सामग्री को बना लेता है, बाद में लोक को बनाता है तो यह भी ठीक नहीं है क्योंकि इसमें अनवस्था दोष आता है। कारण— सामग्री को बनाने के लिए भी कारण सामग्री की आवश्यकता होती है। यदि ईश्वर उस कारण सामग्री को भी पहले बनाता है तो उसे द्वितीय कारण—सामग्री के योग्य तृतीय कारण—सामग्री को उसके पहले भी बनाना पड़ेगा। और इस तरह उस परिपाटी का कभी अंत नहीं होगा।

तेषां स्वभाव सिद्धत्वे लोकेष्यद्येतत् प्रसन्न्यते ।

किं च निर्मातृवद् विश्वं स्वतः सिद्धिमवाप्नुयात् ॥(20)

यदि यह कहो कि वह कारण सामग्री स्वभाव से ही अपने आप ही अपने आप बन जाती है, उसे ईश्वर ने नहीं बनाया है तो यह बात लोक में भी लागू हो सकती है— मानना चाहिए कि लोक भी स्वतः सिद्ध है उसे किसी ने नहीं बनाया। इसके बाद एक बात यह भी विचारणीय है कि उस ईश्वर को किसने बनाया यदि उसे किसी ने बनाया है तब तो ऊपर लिखे अनुसार अनवस्था दोष आता है और यदि वह स्वतः सिद्ध है उसे किसी ने नहीं बनाया है तो यह लोक भी स्वतः सिपद्ध हो सकता है— अपने आप बन सकता है। यदि यह कहो कि वह ईश्वर स्वतन्त्र है तथा सृष्टि बनाने में समर्थ है इसीलिए सामग्री के बिना ही इच्छा मात्र से लोक को बना लेता है तो आपकी यह इच्छा मात्र है। इस युक्ति शून्य

कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हर्ता ?!

कथा पर भला कौन बुद्धिमान मनुष्य विश्वास करेगा ? एक बात यह भी विचार करने योग्य है कि यदि वह ईश्वर कृत्यकृत्य है— सब कार्य पूर्ण कर चुका है— उसे अब कोई कार्य करना बाकी नहीं रह गया तो उसे सृष्टि उत्पन्न करने की इच्छा ही कैसे पैदा होगी ? क्योंकि कृत्यकृत्य पुरुष को किसी प्रकार की इच्छा नहीं होती। यदि यह कहो कि वह अकृतकृत्य है तो फिर वह लोक को बनाने के लिए समर्थ नहीं हो सकता। जिस प्रकार अकृतकृत्य कुम्हार लोक को नहीं बना सकता। एकबात यह भी है कि आपका माना हुआ ईश्वर अमूर्तिक है, निष्क्रिय है, व्यापी है और विकार रहित है सो ऐसा ईश्वर कभी भी लोक को नहीं बना सकता क्योंकि यह ऊपर लिख आये हैं कि अमूर्तिक ईश्वर से मूर्तिक पदार्थों की रचना नहीं हो सकती। किसी कार्य को करने के लिए हस्त-पादादि के संचालन रूप कोई न कोई क्रिया अवश्य करनी पड़ती है। परन्तु आपने तो ईश्वर को निष्क्रिय माना है इसीलिए वह लोक नहीं बना सकता। यदि सक्रिय मानो तो यह असंभव है क्योंकि क्रिया उसी के हो सकती है जिसके कि अधिष्ठान से कुछ क्षेत्र बाकी बचा हो, परन्तु आपका ईश्वर तो सर्वत्र व्यापी है वह क्रिया किस प्रकार कर सकेगा ? इसके सिवाय ईश्वर को सृष्टि रचने की इच्छा भी नहीं हो सकती क्योंकि आपने ईश्वर को निर्विकार माना है। जिसकी आत्मा में राग-द्वेष आदि विकार नहीं है उसके इच्छा का उत्पन्न होना असंभव है। जबकि ईश्वर कृत्यकृत्य है तथा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में किसी की इच्छा नहीं रखता तब सृष्टि के बनाने में इसे क्या फल मिलेगा ? इस बात का भी तो विचार करना चाहिए। क्योंकि बिना प्रयोजन स्वभाव से ही सृष्टि की रचना करता है तो उसकी वह रचना निरर्थक सिद्ध होती है। यदि यह कहो कि उसकी यह क्रीड़ा ही है, क्रीड़ा मात्र से ही जगत् को बनाता है तब तो दुःख के साथ कहना पड़ेगा कि आपका ईश्वर बड़ा ही मोही है, बड़ा ही अज्ञानी है जो कि बालकों के समान निष्प्रयोजन कार्य करता है। यदि यह कहो कि ईश्वर जीवों के शरीरादिक उनके कर्मों के अनुसार ही बनाता है अर्थात् जो जैसा कर्म करता है उसके वैसे ही शरीरादिक की रचना करता है तो यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि इस प्रकार मानने से आपका ईश्वर ईश्वर ही नहीं ठहरता है। उसका कारण यह है कि वह कर्मों की अपेक्षा करने से जुलाहे की तरह परतन्त्र हो जायेगा और परतन्त्र रहने से ईश्वर नहीं हो सकेगा क्योंकि जुलाहा सूत तथा अन्य उपकरणों के परतन्त्र होता है तथा परतन्त्र होने

कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हर्ता ?!

से ईश्वर नहीं कहला सकता। इसी प्रकार आपका ईश्वर भी कर्मों के परतन्त्र है। तथा परतन्त्र होने से ईश्वर नहीं कहला सकता। ईश्वर तो सर्व तन्त्र स्वतन्त्र हुआ करता है। यदि यह कहो कि जीव के कर्मों के अनुसार सुख दुःखादि कार्य अपने आप होते रहते हैं ईश्वर निमित्त ही माना जाता है तो भी आपका यह कहना ठीक नहीं है; क्योंकि जब सुख दुःखादि कार्य कर्म के अनुसार अपने आप सिद्ध हो जाते हैं तब खेद है आप व्यर्थ ही ईश्वर की पुष्टि करते हैं।

दयालु सर्वशक्तिमान ईश्वर की सृष्टि में दुःख क्यों

महानधर्मयोगोऽस्य सृष्टा सहरतां प्रजाः।

दृष्ट निग्रह बुद्ध्या चेद् वरं दैत्याद्यसर्जनम् ॥(31)

जरा इस बात का भी विचार कीजिए कि वह ईश्वर लोक को बनाता है इसीलिए लोक के समस्त जीव उसकी संतान के समान हुए फिर वही ईश्वर सभी का संहार भी करता है। इसीलिए उसे अपनी संतान के नष्ट करने का भारी पाप भी लगता है। कदाचित् यह कहो कि दुष्ट जीवों का निग्रह करने के लिए ही वह संहार करता है तो उससे अच्छा तो यही है कि वह दुष्ट जीवों को उत्पन्न ही नहीं करता। यदि आप यह कहे कि— जीवों के शरीरादि की उत्पत्ति किसी बुद्धिमान कारण से ही हो सकती है क्योंकि उनकी रचना एक विशेष प्रकार की है। जिस प्रकार किसी ग्राम आदि की रचना विशेष प्रकार की होती है अतः वह किसी बुद्धिमान कारीगर का बनाया हुआ होता है उसप्रकार जीवों के शरीरादि की रचना भी विशेष प्रकार की है अतः वे भी किसी बुद्धिमान कर्ता के बनाये हुए हैं और वह बुद्धिमान कर्ता ईश्वर ही है। परन्तु आपका यह हेतु ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध करने में समर्थ नहीं है; क्योंकि विशेष रचना आदि की उत्पत्ति अन्य प्रकार से भी हो सकती है।

स्व संसार का कर्ता स्वयं जीवात्मा—

चेतनाधिष्ठतं हीदं कर्मनिर्मातृचेष्टिम्

नन्वक्षसुखदुःखादि वैश्वरूप्याय कल्प्यते ॥(34)

इस संसार में शरीर, इंद्रियाँ, सुख दुःखादि अनेक पदार्थ देखने में आते हैं उन सबकी उत्पत्ति चेतन आत्मा के साथ संबंध रखने वाले कर्मरूपी विधाता के द्वारा ही होती है।

निर्माणकर्मनिर्मातृकौशलापादितोदयम् ।

अंगोपाङ्गदिवैचित्र्यमङ्गिनां संगिराव हे ॥(35)

इसीलिए हम प्रतिज्ञापूर्वक कहते हैं कि संसारी जीवों के अंग—उपांग आदि में जो विचित्रता पायी जाती है वह सब निर्माण नाम कर्मरूपी विधाता की कुशलता से ही उत्पन्न होती है।

तदेतत्कर्म वैचित्र्याद् भवन्नानात्मकं जगत् ।

विशकर्माणमात्मानं साधयेत् कर्मसारथिम् ॥(36)

इन कर्मों की विचित्रता से अनेक रूपता को प्राप्त हुआ यह लोक ही इस बात को सिन्धु कर देता है कि शरीर, इंद्रियाँ आदि अनेक रूपधारी संसार का कर्ता संसारी जीवों की आत्मायें ही हैं। और कर्म उनके सहायक हैं। अर्थात् ये संसारी जीव ही अपने कर्म के उदय से प्रेरित होकर शरीर आदि संसार की सृष्टि करते हैं।

विधिःसृष्टा विधाता च दैवं कर्म पुराकृतम् ।

ईश्वरश्चेति पर्याया विज्ञेयाः कर्मवेधसः ॥(37)

विधि, सृष्टा, विधाता, दैव, पुराकृत कर्म और ईश्वर ये सब कर्म रूपी ईश्वर के पर्याय वाचक शब्द हैं। इनके सिवाय और कोई लोक को बनाने वाला नहीं है।

आकाशादि के समान विश्व भी अकृत्रिम—

जबकि ईश्वरवादी पुरुष आकाश, काल आदि की सृष्टि ईश्वर के बिना ही मानते हैं तब उनका यह कहना कहाँ रहा कि संसार की सब वस्तुयें ईश्वर के द्वारा ही बनाई गयी हैं? इस प्रकार प्रतिज्ञा भंग होने के कारण शिष्ट पुरुषों को चाहिए कि वे ऐसे सृष्टिवाद का निग्रह करें कि जो व्यर्थ ही मिथ्यात्व के उदय से अपने दूषित मत का अहंकार करता है। इसीलिए यह मानना चाहिए कि यह लोक काल द्रव्य की भाँति ही अकृतिम है, अनादि निधन है, आदि—अन्त से रहित है और जीव—अजीव आदि तत्वों का आधार होकर हमेशा प्रकाशमान रहता है। न इसे कोई बना सकता है, न इसका संहार कर सकता है, यह हमेशा अपनी स्वाभाविक स्थिति में विद्यमान रहता है तथा अधोलोक, तिर्यक्लोक, ऊर्ध्वलोक इन तीनों भेदों से सहित है। वेत्रासन, झल्लरी और मृदंग के जैसा आकार होता है। अधोलोक, मध्यलोक, ऊर्ध्वलोक का भी ठीक वैसा ही आकार होता है। अर्थात् अधोलोक वेत्रासन के समान नीचे विस्तृत और ऊपर सँकड़ा है, मध्यमलोक झल्लरी

कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हर्ता?!

के समान सब ओर फैला हुआ है और ऊर्ध्वलोक मृदंग के समान बीच में चौड़ा तथा दोनों भांगों में सकड़ा है।

दयालु सर्वशक्तिमान ईश्वर की सृष्टि दुःखी क्यों—

वत्सलः प्राणिनामेकः सूजन्ननुजिधृक्षया ।

ननु सौख्यमयी सृष्टिं विदध्यादनुपप्लुताम् ॥(28)

कदाचित् यह कहा जाये कि ईश्वर बड़ा प्रेमी है— दयालु है इसीलिए वह जीवों का उपकार करने के लिए ही सृष्टि की रचना करता है तो फिर उसे इस समस्त सृष्टि को सुखरूप तथा उपद्रव रहित ही बनाना चाहिए था। दयालु होकर भी सृष्टि के बहुभाग को दुःखी क्यों बनाता है? एक बात यह भी है कि सृष्टि के पहले जगत् था या नहीं? यदि था तो स्वतः सिन्धु वस्तु के रचने में उसने व्यर्थ परिश्रम क्यों किया? और यदि नहीं था तो उसकी वह रचना क्या करेगा? क्योंकि जो वस्तु आकाशकमल के समान सर्वथा असत् है उसकी कोई रचना नहीं कर सकता। यदि सृष्टि का बनाने वाला ईश्वर मुक्त है— कर्ममल, कलंक से रहित है तो वह उदासीन—रागद्वेष से रहित होने के कारण जगत् की सृष्टि नहीं कर सकता। और यदि संसारी है— कर्म मल कलंक से सहित है तो वह हमारे—तुम्हारे समान ही ईश्वर नहीं कहलायेगा तब सृष्टि किस प्रकार करेगा? इस तरह यह सृष्टिवाद किसी तरह सिन्धु नहीं होता।

सच्चा त्यागी

‘ले य कंते पिए भोए, लब्धे विपिटिठ कुव्वङ्।

साहीणे चयङ् भोए, से दु चाइ ति वुव्वङ्॥’

अर्थ— गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी जो मनुष्य सुन्दर तथा प्रिय भोगों को प्राप्त करके भी उनकी ओर पीठ करता है, अर्थात् उन भोगों में अलिप्त रहता है; इतना ही नहीं अपने अधीन होने वाले भोगों को भी जो छोड़ता है, वही सच्चा त्यागी कहलाता है।

4 विश्व अकृत्रिम एवं शाश्वतिक : एक चर्चा

(वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनंदीजी की अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक
डॉ. जयन्त विष्णु नार्लीकर से वार्ता)

दिनांक 7-11-2000 को शाम 5 बजे से 5.45 तक हुई इस चर्चा में वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनंदीजी तथा अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक डॉ. जयन्त विष्णु नार्लीकर ने ब्रह्माण्ड से जुड़े विभिन्न विषयों पर वार्तालाप हुआ। आचार्यश्री ने डॉ. नार्लीकर के कार्यों की प्रशंसा करते हुए कहा कि आपका कार्य जैनधर्म से बहुत मेल रखता है। बहुत से सिद्धान्त जैन धर्म पर आधारित हैं। किन्तु कुछ विपरीत भी हैं। तथापि आपका कार्य मुझे बहुत अच्छा लगा। आप जैन धर्म में निहित इस ब्रह्माण्ड से संबंधित विषय का अध्ययन करें। निश्चितरूप से आपके कार्य में तीव्रता आयेगी।

इस अवसर पर आचार्यश्री व नार्लीकर के मध्य हुई चर्चा के कुछ अंश इसप्रकार से हैं।

आचार्यश्री – भारतीयों ने ‘सापेक्षता के सिद्धान्त’ को जीवन में नहीं अपनाया जबकि आइंसटीन ने इसे समझा, परंतु हमें बौद्धिक व धार्मिक समन्वय करना नहीं आया, तथापि क्या भारतीय वास्तविक ज्ञान तुच्छ है?

डॉ. नार्लीकर – भारतीय ज्ञान तुच्छ नहीं है, किन्तु व्यवहारीकरण, आधुनिकीकरण, प्रस्तुतीकरण सही नहीं हुआ है।

डॉ. नार्लीकर : आचार्यश्री क्या भगवान् महावीर जैन धर्म के संस्थापक थे?

आचार्यश्री : भगवान् महावीर जैन धर्म के केवल अन्तिम प्रचारक थे, प्रवर्तक नहीं थे। संस्थापक भी नहीं थे। जैन धर्म का तो प्रचार-प्रसार इस युग में सर्वप्रथम ऋषभदेव भगवान् ने किया था, और उनके बाद अन्य 22 तीर्थकर हुए व अंतिम 24 वें तीर्थकर भगवान् महावीर थे। इस सम्बन्धित अत्यधिक भ्रम होने के कारण मैंने अपने साहित्य में भी विस्तृत वर्णन किया है, एवं आगे भी प्रायोगिक व लिखितरूप से प्रयासरत हूँ। इस अवसर पर आचार्यश्री ने स्वरचित लगभग 24-25 ग्रंथ डॉ. नार्लीकर को भेंट किये जिसमें ‘विश्व वैज्ञान रहस्य’, ‘स्वतन्त्रता के सूत्र’, ‘संस्कार’ आदि ग्रंथ सम्लित थे। साथ ही खगोल, भूगोल, गणित,

इतिहास, मनोविज्ञान, धर्म, स्वास्थ्य आदि गहन विषयों पर आधारित शास्त्रादि एवं दिनांक 9-11-2000 से होने वाली चतुर्थ राष्ट्रीय वैज्ञानिक संगोष्ठी से संबंधित सामग्री पेन आदि तथा पूर्व में हुई तीन सफल विराट राष्ट्रीय वैज्ञानिक संगोष्ठी से संबंधित स्मारिक, मोनोग्राम देकर आशीर्वाद प्रदान किया। ब्रह्माण्ड से जुड़े विभिन्न आयामों के गृह रहस्यों को संजोये तिलोयपण्णति के तीन भाग भी आ. श्री द्वारा आशीर्वाद स्वरूप भेंट किये गये।

आगे की चर्चा इस प्रकार से है-

आचार्यश्री – मैं चाहता हूँ कि आप इस संगोष्ठी में भाग लें।

डॉ. नार्लीकर – मेरा आगे दिल्ली में भाषण होने के कारण आचार्यश्री मैं क्षमा चाहता हूँ, पुनः समय मिलने पर अवश्य आऊँगा। आप भी पूना में हमारी संस्था में पद्धारना।

आचार्यश्री – मेरा अन्तरंग क्या है? मैं बताना चाहता हूँ। सभी दृष्टि से हमारा भारत बहुत महान् है किन्तु हमने धर्म, विज्ञान आदि को अलग-अलग छाँट कर रख दिया, हम समन्वय नहीं कर पाये। हमारे यहाँ का अनेकान्त सिद्धान्त हमने अपने जीवन में नहीं अपनाया। आइंसटीन ने उसे समझा और उसे प्रायोगिक रूप से अपनाया। मैं चाहता हूँ कि हमारे यहाँ जो Theory of Relativity (सापेक्षता का सिद्धान्त) Ecosystem (परिस्थितिकी का सिद्धान्त) जो कि ‘परस्परोग्रहो जीवानाम्’ के रूप में है। वह प्रायोगिक जीवन में आये। धर्म में विज्ञान, विज्ञान में धर्म, धर्म में राजनीति, राजनीति में धर्म, धर्म में शिक्षा, शिक्षा में धर्म, दर्शन, विज्ञान आदि का समन्वय हो। धर्म व विज्ञान के समन्वय के दृष्टिकोण से मैं आपको इस संगोष्ठी में रहने के लिए कह रहा हूँ।

डॉ. नार्लीकर – आचार्यश्री मैं समय सीमा व समय व्यस्तता के कारण क्षमाप्रार्थी हूँ। आचार्यश्री ने भारतीयों में समन्वय न कर पाने की विडम्बना की चर्चा करते हुए कहा कि ‘मैं धर्म और विज्ञान को अन्य सभी विषयों से जोड़ना चाहता हूँ, समन्वय करना चाहता हूँ। इस दिशा में प्रयासरत हूँ और इसी उद्देश्य हेतु गत तीन विराट राष्ट्रीय वैज्ञानिक संगोष्ठीयों का आयोजन भी किया है। जिसमें सर्वप्रथम ‘स्वतन्त्रता के सूत्र’ जो मोक्षशास्त्र पर आधारित मेरी वैज्ञानिक टीका है, सागवाड़ा (डूँगरपुर) में संगोष्ठी आयोजित की गयी थी। तत्पश्चात् सलुम्बर और झाड़ोल में आयोजित संगोष्ठीयों के सफल आयोजन के उपरान्त मेरे द्वारा

कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हर्ता ?!

रचित 'सर्वोदय शिक्षा मनोविज्ञान' में शिक्षा से जुड़े विभिन्न विषयों पर यह चतुर्थ विराट राष्ट्रीय वैज्ञानिक संगोष्ठी होने जा रही है। मैं चाहता हूँ कि भारतीय लोग बौद्धिक, सामाजिक, आर्थिक, आध्यात्मिक सभी स्तर पर समन्वय स्थापित करें।

तदुपरान्त आचार्यश्री ने प्रश्न करते हुए कहा कि नार्लीकरजी, आपने ब्रह्माण्ड के लिए जो 'अनादि स्थिति सिद्धान्त' (Theory of steady state) का प्रतिपादन किया यह सिद्धान्त तो आइंसटीन के (Cyinder Theory of the universe) तथा (Big Bang theory) से विपरीत है, आप उन सिद्धान्तों को क्यों नहीं मानते ? उनमें क्या- क्या कमियाँ हैं ? और जो आप मानते हो, उसके लिए आपके पास क्या-क्या प्रमाण हैं ?

डॉ. नार्लीकर – Big Bang theory जो कि आजकल बहुजन मान्य है, ऐसा माना जाता है कि ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति एक विस्फोट से एक क्षण में हुई। विस्फोट के बाद तेजी से पदार्थ, कण एक दूसरे से दूर भागते गये, परिणामस्वरूप इनकी ऊर्जा कम होती गई। बाद में इन्हीं के मिलने से मूल कण (Elementry Particles) बनें और आगे इन कणों के मिलने से बड़े-बड़े पिण्ड बनते गये। किन्तु इस सिद्धान्त में पहली कठिनाई यह है कि हम उत्पत्ति के इस शून्य क्षण को स्थिति के बारे में जो बहुत महत्वपूर्ण है, कुछ नहीं जान सकते क्योंकि उस क्षण विज्ञान फैला हो जाता है, क्योंकि गणित में किसी भी संख्या को शून्य से भाग नहीं दिया जा सकता है, अतः उत्पत्ति के क्षण की व्याख्या नहीं हो पाई है। दूसरी कठिनाई यह है कि ब्रह्माण्ड में बिगबैंग की उम्र से भी अधिक उम्र के तारे पाये गये हैं, परंतु यह उसी प्रकार असंभव है जैसे पिता की उम्र से अधिक पुत्र की उम्र हो। खोज के दौरान ऐसे कई तारे पाये गये जिनकी आयु 120-180 करोड़ वर्ष है। जबकि बिगबैंग सिद्धान्त के अनुसार 100 करोड़ वर्ष से ज्यादा समय दूरी नहीं हो सकती है। अन्य कारणों में ऐसा माना जाता है कि ब्रह्माण्ड जब एक से तीन मिनट की आयु का था, तब उसका बहुत बड़ा तापमान था। यह तापमान लगभग 10 अरब डिग्री केल्विन से घटते-2 करीब करोड़ डिग्री केल्विन रह गया, उस समय हीलियम, ड्यूटीरियम जैसे हल्के तत्व बनें, जिससे हमारा शरीर बना है। इसका घनत्व एक निश्चित सीमा से अधिक नहीं हो सकता है। अगर वह उससे अधिक बढ़ गया तो ड्यूटीरियम का प्रमाण घटकर लगभग शून्य हो जाता है जबकि आजकल हम ब्रह्माण्ड में ड्यूटीरियम पाते हैं

कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हर्ता ?!

तो वह कहाँ से आया ? उन लोगों को ऐसा मानना पड़ता है बेरियोन का घनत्व एक निश्चित सीमा से अधिक नहीं जा सकता, किन्तु आजकल हम देखते हैं कि ब्रह्माण्ड में जो दृश्य पदार्थ या ब्लेक मैटर आदि है उन सबका घनत्व बहुत ज्यादा है, तो उन लोगों का मानना है कि यह नान-बेरियोन पदार्थ (Non-baryen matter) है। (बेरियोन से नहीं बना है) जिसका प्रकाश से संयोग नहीं हो सकता है। यह अद्भुत पदार्थ (Matter) क्या है ? यह कोई नहीं बता सकता। नये पदार्थों की उनको आवश्यकता पड़ती है, जिसका उनके पास कोई प्रमाण नहीं है। उनको मानना पड़ता है कि पहले ऐसा था, अब नहीं है। इसप्रकार उनको कुछ अतिरिक्त मान्यताओं का सहारा लेना पड़ता है। जो इस सिद्धान्त की पुष्टि करते हैं। साथ ही ब्रह्माण्ड की सृष्टि का भी प्रमाण नहीं है। आजकल जिसे हम Quasi steady state and cosmology (ब्रह्माण्ड विज्ञान) कहते हैं, उसके अनुसार अभी आकाश गंगाओं के केन्द्र भाग में जो विस्फोट हो रहे हैं उनके परिणामस्वरूप ऊर्जा बाहर निकल रही है। इसे बिंग बैंग (Big-Bang) के स्थान पर (Mini Bang) मिनी बैंग कहते हैं तो अधिक उपयुक्त होगा। मिनी बैंग (Mini bang) से जो पदार्थ की उत्पत्ति हो रही है वह शून्य से नहीं हो रही है। वास्तव में ऋणात्मक ऊर्जा फील्ड के कारण यह उत्पत्ति हो रही है और इससे इस फील्ड (Field) की वृद्धि भी हो जाती है।

सापेक्षता के सिद्धान्त (Theory of Relativity) के अनुसार हमने यह गणित बनाई है कि इस मिनी बैंग (Mini Bang) के जगह-जगह होते रहने से प्रत्येक क्षण Matter(पदार्थ) एक- दूसरे से दूर जाता रहता है, और ब्रह्माण्ड का विस्तार होता रहता है। क्योंकि यह Mini Bang हर क्षण होते रहते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति किसी एक समय नहीं हुई, अपितु यह अनादि निधन है। इसमें केवल परिवर्तन होते रहते हैं।

डॉ. नार्लीकर ने कहा कि अब आपका प्रश्न हो सकता है कि इन सबका क्या प्रमाण है ? तो मेरा जवाब है कि जब ब्रह्माण्ड का प्रसार होता है तो वह फैलता है, किन्तु यह सीधे ढंग से नहीं होता है कभी ज्यादा, कभी कम। यह प्रसार oscillatory होता है, परन्तु लम्बी अवधि में विस्तार ही घटित होता है।

आचार्यश्री ने कहा कि जैनधर्म में इसे षट्गुण हानि वृद्धि कहते हैं। अथवा "उत्पाद व्यय-ध्रोव्य युक्त सत्" भी कहते हैं। डॉ. नार्लीकर ने चर्चा को जारी

कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हर्ता?

रखते हुए कहा कि अब यदि पिछले cycle में जो तारें पैदा हुए थे उन्हें देखे तो उन तारों की आयु अब काफी अधिक होगी, लगभग 40-50 अरब वर्ष होगी, वे Big Bang में सम्मिलित नहीं हो पायेंगे। हमने सुझाव दिया है कि ऐसे तारे खोजे जाये जिनकी उम्र काफी अधिक है। इससे यह सिद्ध हो जायेगा कि ब्रह्माण्ड की आयु बहुत अधिक है। इसके लिए हमनें पुराने तारों के लक्षण भी वैज्ञानिकों को बताये हैं।

उपरोक्त के अलावा यह प्रश्न है कि पुराने तारे जो भस्मसात् हो चुके हैं उनसे निकलने वाली ऊर्जा जो अनन्त समय से चली आई है वह आजकल कहाँ है? उसका हिसाब भी लगाया जा सकता है। यह ऊर्जा चारों तरफ फैली हुई है और वह एक विकिरण परिप्रेक्ष्य के रूप में दिखाई देनी चाहिए। गणना करने पर उसका माप लगभग 2.7 डिग्री कैल्विन आता है जो कि आज observation के बिल्कुल सही पाया गया है। Big Bang Theory (बिंग-बैंग सिद्धान्त) यह नहीं बता सकता कि प्रारम्भ में जो तीव्र ऊर्जा थी वह आज कम होते-होते 2.7 डिग्री कैल्विन क्यों रह गयी है? जबकि हमारे सिद्धान्त से यह ठीक प्रतिपादित हो जाता है। इसके अलावा यह गैलेक्सी कैसे बनी? इसके वितरण (distribution) क्या है? इसके बारे में हमनें कम्प्यूटर पर सिमुलेशन (Simulation) किया है, और उसका परिणाम Match हो जाता है। इस तरह के प्रमाणों से हमें लगता है कि हम सही रास्ते पर हैं और हमारा सिद्धान्त सही है। आचार्यश्री ने कहा कि आप बिल्कुल सही रास्ते पर हैं अन्य वैज्ञानिकों की अपेक्षा आपका सिद्धान्त सत्यता के अधिक निकट है, भले ही आज विश्व आपका सिद्धान्त नहीं मानता है, किन्तु सत्य की राह पर आप अवश्य ही विजयी होंगे।

आचार्यश्री – दो दोस्तों की उम्र समान होने पर भी एक दोस्त तीव्र गति से ब्रह्माण्ड का चक्कर लगाकर आने के पश्चात् दूसरें दोस्त से आयु में छोटा क्यों रहता है? जो दोस्त यहीं रहा उसकी उम्र अधिक क्यों हो जाती है? यह आप विज्ञान एवं गणित के आधार पर मुझे समझाइये।

डॉ. नार्लीकर – आचार्यश्री, इसे Clock paradox कहते हैं। मान ले A, B दो व्यक्ति हैं। A बैठा है तथा B तीव्रगति से चक्कर लगाकर आ गया। यदि आप सापेक्षता के सिद्धान्त से (Theory of Relativity) देखें तो A की अपेक्षा B की घड़ी में धीमे-2 चलती है। इसके Projection के हिसाब से समझा जा सकता है।

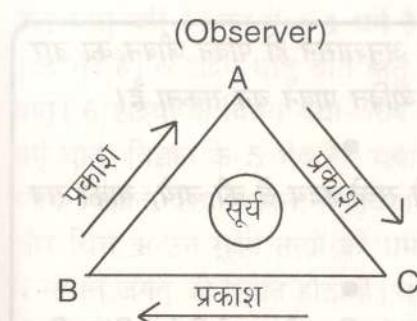
कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हर्ता?

आचार्यश्री – समय तो अमूर्तिक है तो फिर ऐसा क्यों?

डॉ. नार्लीकर – सापेक्षता सिद्धान्त (Theory of Relativity) में और दूरी एक-दूसरें से जुड़ जाते हैं। समय एक चतुर्थ आयाम है। यदि आप तीन आयाम (Coordinates) लेते हैं तो किसी भी बिन्दु की दूरी $x^2 + y^2 + z^2$ होती है, परं यदि आप चार आयाम लें तो किन्हीं दो घटनाओं के बीच की दूरी नापने का सूत्र $\sqrt{x^2 + y^2 + z^2 - c^2 + t^2}$ है जहाँ t चोथा आयाम है। सापेक्षता सिद्धान्त (Theory of Relativity) के अनुसार 0, x, y, z, t में परिवर्तन से उसके परिणाम में परिवर्तन हो जाता है। जब हम A के माध्यम से देखते हैं तो उसके अनुसार ब्रह्माण्ड का सभी दिशाओं में प्रसारण समान होगा जबकि यदि B स्वयं को स्थिर समझें तो उसके अनुसार एक गैलेक्सी तेजी से जा रही होगी और दूसरी कम गति से। अतः B की स्थिरता वास्तविक नहीं है, जबकि A की वास्तविक है। इसीलिए B की घड़ी धीमी हो जाती है और A की उम्र B से अधिक हो जाती है। B की घड़ी धीमी होने के कारण उसमें रासायनिक परिवर्तन अत्यन्त अल्प होगा।

आचार्यश्री – आइंस्टीन ने कहा कि Space और Time भी वक्र हो जाते हैं। जहाँ ज्यादा Mass (द्रव्य) होगा वहाँ Space भी वक्र हो जाता है क्यों?

डॉ. नार्लीकर – ऐसा आपके नापने की प्रक्रिया के नियम के बदलने से होता है। मान ले A,B,C तीन व्यक्ति सूर्य को धेरे हुए हैं और एक दूसरे की तरफ प्रकाश भेजते हैं।

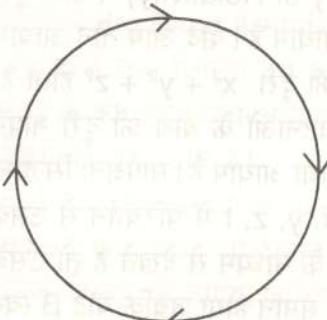


साधारण ज्यामिती के अनुसार –
 $\angle A + \angle B + \angle C$ का योग 180° होगा। परंतु सापेक्षता सिद्धान्त के अनुसार $\angle A + \angle B + \angle C$ का योग 180° से कुछ अधिक हो जाता है। इसी कारण Space में वक्रता दिखाई देती है।

आचार्यश्री – आइंस्टीन ने अपने सापेक्षता सिद्धान्त (Theory of Relativity) में ब्रह्माण्ड और प्रतिब्रह्माण्ड (Universe and Antiuniverse) की बात कही। आपके अनुसार ऐसा कैसे होता है?

कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हर्ता ?!

डॉ. नार्लीकर— एक गोलाकार वस्तु को लें जिसका घनफल सीमित है। उस वस्तु की सतह पर यदि हम चलें तो कुछ समय बाद हम जहाँ से जायेंगे लौटकर वही आ जायेंगे। ब्रह्माण्ड तो सीमित है परन्तु प्रति ब्रह्माण्ड असीमित, अनंत है।



आचार्यश्री — ऐसा क्यों ?

डॉ. नार्लीकर— वह आइंस्टीन के Modal (मॉडल) थे और उन्होंने सीमित मॉडल को ही पसंद किया था। इसे हम Super ball के हिसाब से भी समझ सकते हैं। जो चर्तुआयामी मॉडल है।

समय की कमी के कारण आगे चर्चा नहीं हो सकी। आचार्यश्री ने डॉ. नार्लीकर को आशीर्वाद देते हुए अन्त में इस बात के साथ विदा दी कि भविष्य में हम E-mail, इंटरनेट आदि से सम्पर्क में रहेंगे एवं परस्पर विचार-विमर्श करते रहेंगे। समय मिलने पर डॉ. नार्लीकर ने आचार्यश्री से पूना विश्वविद्यालय में आने का साग्रह अनुरोध किया।

आचार्यश्री कनकनंदी जी गुरुदेव भी विश्व को शाश्वतिक मानते हैं। उन्होंने इसका वर्णन (1) विश्व विज्ञान रहस्य (2) विश्व इतिहास (3) विश्व द्रव्य विज्ञान (4) स्वतन्त्रता के सूत्र आदि ग्रन्थों में किया है। विश्व विज्ञान रहस्य आदि ग्रन्थों का अध्ययन डॉ. नार्लीकर भी कुछ वर्षों से कर रहे हैं।

सहर्ष युक्त नप्रता शिष्टाचार तथा अनुशासन ही पावन जीवन का द्वार खोल सकता है। इसके माध्यम से ही व्यक्ति पावन बन सकता है।

● ● ●

संयम की सच्ची साधना वही है जो सच्चे हृदय से की जाये, वाकी सब आत्मा की विराधना है।

● ● ●

हे महाशय ! तू अपनी शक्ति के अनुसार भक्ति को राग से निरंतर जिनभक्ति में उत्कृष्ट दश प्रकार की वैव्यावृत्ति कर।

आ. विरागसागरजी

52

कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हर्ता ?!

5 विभिन्न दर्शन में वर्णित प्राकृतिक विश्व

बौद्ध दर्शन के अनुसार प्राकृतिक विश्व—

पदार्थ समूह आकस्मिक अदृष्ट के कारण अथवा ईश्वर से नहीं हो सकता है। परिवर्तन नहीं होता है, ऐसा भी नहीं है। हमारा कर्म प्रपञ्च को सृष्टि करता है एवं लोक की विचित्रता का कारण है। कार्य-कारण नियम, क्षणिकत्व, निःद्रव्यत्व एवं स्वलक्षणत्व की सूचना करता है। अनेक कारणों से कार्य होने से कार्य, कारण से भिन्न है। प्रधान आलम्बन, समानान्तर, आधिपत्य इत्यादि आत्मा नहीं है। क्षणिक धर्म प्रवाह से पंच स्कन्धों से कर्म एवं राग-द्वेष उत्पन्न होकर गर्भ में प्रवेश करता है। आत्मा नित्य है। इसीप्रकार का अस्तित्व भाव ही अविद्या है एवं इससे ही दुःख है।

हीनयान वैभाषिक की अपेक्षा जगत् एवं चित्त संतति दोनों की पृथक्-2 सत्ता स्वीकार करते हैं। जगत् की सत्ता बाहर में है, जो इंद्रियों के द्वारा जानने में आती है और चित्त संतति की सत्ता अंतरंग में है। समस्त जगत् तीन भागों में विभक्त है। (1) स्कन्ध (2) आयतन (3) धातु। स्कन्ध पाँच हैं। चार स्कन्धों का संबंध मानसिक विकृतियों से है। आयतन बारह हैं। मन सहित छः इंद्रिय तथा इनके 6 विषय, इस प्रकार 12 आयतन हैं। इन्हें धातु कहते हैं। इनमें से 6 ही प्रकार के ज्ञान उत्पन्न होते हैं आत्मा का ज्ञान अंद्रियों से नहीं होता है इसीलिए आत्मा कोई वस्तु नहीं है। मन में 6 4 धर्म हैं और शेष में एक-एक धर्म है। धातु के 18 भेद हैं। 6 इंद्रिय धातु श्रोत धातु, ग्राण धातु, रसना धातु, काय धातु, मन धातु। 6 इंद्रियों के विषय यथा—रूप धातु, गंध धातु, रस धातु, स्पर्शन धातु, धर्म धातु। विज्ञान के 5 भेद हैं—यथा—चक्षुविज्ञान, श्रोतविज्ञान, ग्राणविज्ञान, रसना विज्ञान, काय विज्ञान, मनोविज्ञान या अन्तर हृदय के भावों का ज्ञान। भूत और चित्त के उन सूक्ष्म तत्वों को धर्म कहते हैं। जिसके आधात एवं प्रतिधात से समस्त जगत् की स्थिति होती है। सभी धर्म सत्तात्मक एवं क्षणिक है। धर्म के दो भेद हैं, संस्कृत एवं असंस्कृत। नित्य, स्थाई, शुद्ध व अहेतुक। पारिणामिक धर्म को असंस्कृत कहते हैं। असंस्कृत धर्म पुनः तीन भेदों में विभाजित है—(1) प्रतिसंख्या निरोध (2) अप्रतिसंख्या निरोध (3) आकाश। प्रज्ञा द्वारा रागादिक साश्रव धर्म का निरोध अर्थात् (धर्मस्य ध्यान) प्रति संख्या निरोध ध्यान कहलाता है।

कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हर्ता ?!

है। बिना प्रज्ञा के आश्रव धर्म का निरोध अर्थात् (शुक्ल ध्यान) अप्रति संख्या निरोध कहलाता है। अप्रतिसंख्या निरोध ही वास्तविक निरोध है। आवरण के अभाव को आकाश कहते हैं। ‘तत्राकाश मनोवृत्ति’ यह नित्य व अपरिवर्तनशील है। रूप, चित्त, चैतसिक तथा चित्त विप्रमुक्त के भेद से संस्कृत धर्म के चार प्रकार हैं। रूप के 11 भेद, चित्त का एक भेद, चैतसिक के 46 भेद, और चित्त विप्रमुक्त के 16 भेद हैं। 5 इंद्रिय तथा उनके 5 विषय तथा अविज्ञाप्ति के 11 रूप अर्थात् भौतिक पदार्थों के भेद हैं। इंद्रिय व उनके विषयों के परस्पर आघात से तथा चित्त के विषयों के परस्पर आघात से जो चित्त उत्पन्न होता है, वही मुख्य तत्व है। इसमें सर्व संस्कार रहते हैं। इनकी स्वतन्त्र सत्ता नहीं है, क्योंकि हेतु प्रत्यय से उत्पत्ति होती है। यह एक है पर उपाधियों के कारण इनके अनेक भेद प्रभेद हैं। यह प्रतिक्षण बदलता है। इस लोक और परलोक में आता जाता है चित्त में घनिष्ठ संबंध रखने वाले मानसिक व्यापारों को चैतसिक या चित्त संप्रयुक्त धर्म कहते हैं। इसके 46 प्रभेद हैं। जो धर्म न रूप न रूपधर्म, न चित्त धर्म में परिणत हो उन्हें चित्त विप्रमुक्त धर्म कहते हैं। इनकी संख्या 14 है।

हीनयान सौत्रान्तिक की अपेक्षा अंतरजगत् सत् है परन्तु बाह्य जगत् नहीं। यह केवल चित्त में उत्पन्न होने वाले धर्म पर निर्भर है। इनके मत से उत्पत्ति से पूर्व या विनाश के पश्चात् शब्द की स्थिति नहीं रहती। इसीलिए शब्द अनित्य है। सत्तागत दो वस्तुओं में कार्य कारण भाव नहीं है। वर्तमान काल के अतिरिक्त भूत, भविष्य काल भी नहीं है। परमाणु निरावयव होता है। अतः इसके संगठित होने पर ही यह पृथक् रहता है। केवल उनका परिणाम बढ़ जाता है।

महायान योगाचार्य की अपेक्षा बाह्य जगत् असत् है। चित्त या विज्ञान ही एकमात्र परम तत्व है। महायान शून्यवाद की अपेक्षा—तत्त्व सृष्टि से न बाह्य जगत् की सत्ता है न अन्तर जगत् की सत्ता है। सभी शून्य के गर्भ में विलीन हो जाते हैं। यह न सत् है, न असत्, न उभय, न अनुभय, वस्तुतः यह अलक्षण है। ऐसा शून्य ही एकमात्र परम तत्व है। यह स्वलक्षण मात्र है। इसकी सत्ता दो प्रकार की है। (1) संवृत्ति सत्य (2) परमार्थ सत्य। संवृत्ति सत्य परमार्थ सत्य को आवरण करने वाला है। इसको अविद्या मोहादि कहते हैं। यह संवृत्ति भी दो प्रकार की है। (1) तथ्य संवृत्ति (2) मिथ्या संवृत्ति। जिस घटना को सत्य मानकर लोक का व्यवहार चलता है उसे लोक संवृत्ति या तथ्य संवृत्ति कहते हैं। जो घटना यद्यपि

कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हर्ता ?!

किसी कारण से उत्पन्न अवश्य होती है पर उसे सभी लोग सत्य नहीं मानते हैं, उसे मिथ्या संवृत्ति कहते हैं। परमार्थ सत्य निर्वाण स्वरूप है। इसे शून्यता तथा भूतकोटि धर्म धातु आदि भी कहते हैं। निस्वभावना ही वस्तुतः परमार्थ सत्य है अनिर्वचनीय है।

चार्वाक सिद्धान्त के अनुसार विश्व—

चार्वाक सिद्धान्त भूतैक्यास्तिक वाद है। चार्वाक के मतानुसार आकाश एक भूत (तत्व) है। आत्मा, इंद्रियाँ, प्राण एवं मन एक तत्व है। इसीप्रकार अर्वाचीन चार्वाक मतानुयायी मानते हैं कि भूमि, जल, अग्नि एवं वायु ये चार ही वस्तुये नित्य एवं सत्य हैं। प्राचीन चार्वाक, मतानुयायी आकाश को तत्व नहीं मानते थे, क्योंकि आकाश इंद्रियों से नहीं जाना जा सकता है। सजीव एवं निर्जीव सर्व वस्तु इस मूल तत्व से ही उत्पन्न होती है। एक परम तत्व भौतिक तत्व ही है। जिसप्रकार कांटा का तीक्ष्णत्व, इक्षुदण्ड का मधुरत्व, पक्षियों का आकाश गमनत्व, अग्नि का ऊष्णत्व आदि आकस्मिक फल अर्थात् स्वभाव से सृष्टि है, किंतु देव द्वारा सृष्टि नहीं है, उसीप्रकार यह विशाल विश्व सृष्टि आकस्मिक घटना से उत्पन्न हुई है। भौतिक वस्तु के मूलगुण मिलने पर अकस्मात् विश्व का उदय हुआ। इसको यदृच्छा (आकस्मिकवाद) कहते हैं। कुछ वादी मानते हैं इंद्रियानुभूति के पहले विश्व था, उसके होने वाला तत्व ही स्वभाव है, इसीलिए प्रकृति से अतीत, बुद्धिशक्ति वाला व्यक्ति ही समस्त विश्व का परम कारण है, इसीप्रकार की भावना अनावश्यक है इसे स्वभाववाद कहते हैं।

चेतन देह का एक गुण है। भौतिक कण कोई कारणवश एक होकर मनुष्य देह से परिणित होने पर चैतन्य उत्पन्न होता है। तंदुल, शक्कर, द्राक्षरस आदि अमादक वस्तुओं के मिश्रण से मादक वस्तु की सृष्टि होती है। उसीप्रकार अचेतन भूमि, जल, वायु, अग्नि एवं आकाश के परमाणुओं के मिश्रण से एक चैतन्य शक्ति उत्पन्न होती है। इसकारण आत्मा कोई स्वतन्त्र वस्तु नहीं है, देह ही आत्मा है। मैं कृश हूँ, स्थूल हूँ इत्यादि वस्तु वाक्य से मैं देह हूँ, अन्य कुछ नहीं हूँ, ऐसा सिद्ध होता है। देह के नाश से चैतन्य का भी नाश हो जाता है। भूमि आदि मूल तत्व मरण के पश्चात् अपनी-2 जाति को छले जाते हैं। पाप-पुण्य के अनुसार आत्मा देहान्तर को प्राप्त करता है। यह अर्थ शून्य सिद्धान्त है।

कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हर्ता ?!

सांख्य सिद्धान्त के अनुसार प्राकृतिक विश्व—

पुरुष स्वाभाविक परिशुद्ध होने पर भी अविवेक प्रकृति की दृष्टि में बँधा हुआ है। इस अविवेक का आदि नहीं है। इससे सिद्ध हुआ कि संसार बंध का भी आदि नहीं है। शरीर के दो प्रकार हैं। (1) सूक्ष्म शरीर (तन्मात्रा) (2) स्थूल शरीर। सूक्ष्म शरीर आत्मा के मोक्ष का साधन है। इस सूक्ष्म शरीर से ही इन्द्रियादि सृष्टि होते हैं। प्रकृति अचेतन होने पर भी संसार की सृष्टि के लिए समर्थ है। प्रकृति से ही संसार की सृष्टि है। प्रकृति से संसार की सृष्टि होने के कारण ईश्वर कर्तावाद की आवश्यकता नहीं है। यदि ईश्वर है तो पूर्ण मनोरथ होना चाहिए। पूर्ण मनोरथ व्यक्ति को प्रपञ्च सृष्टि का क्या प्रयोजन है? उसके प्राणियों पर दया होने पर निःश्रेयस् के लिए सृष्टि सृष्टि की यह युक्तियुक्त नहीं है। यह सत्य होने पर भी सृष्टि के पहले भी प्राणी दुःखी थे यह सिद्ध हुआ। यह अयुक्त युक्त है। सृष्टि के पहले चेतन का इन्द्रियादि से संबंध नहीं था, इसीलिए प्राणी दुःखी नहीं था। इसीकारण ईश्वर को कारण दिखाने की आवश्यकता ही नहीं है। इसीलिए ईश्वर होने पर भी सृष्टि उनसे नहीं हुई है। प्रकृति स्वतः सृष्टि के लिए प्रवृत्त होती है। उसी प्रकार पुरुष को मोक्ष प्राप्ति के लिए भी प्रकृति प्रवृत्त होती है।

“पुरुषस्य दर्शनार्थं कैवल्यार्थं तथा प्रधानस्य”

प्रधान की प्रवृत्ति पुरुष के भोग एवं अपवर्ग के लिए ही होती है। पुरुष कुछ भी सृष्टि नहीं करता है। परमेश्वर भी भूत प्राणियों के न कर्तापन को और न कर्मों को और न ही कर्मों के फल संयोग को वास्तव में रचता है, अपितु परमात्मा के सकाश से ही प्रकृति वर्तती है, अर्थात् गुण ही गुण में वर्तते हैं। (गीता) सर्वव्यापी परमात्मा न किसी के पापकर्म को और न किसी के शुभ कर्म को ग्रहण करता है, बल्कि (माया के) अज्ञान द्वारा ज्ञान ढका हुआ है, इससे सब जीव मोहित हो रहे हैं। (गीता)

कोई पूछ सकता है कि अचेतन प्रकृति किस प्रकार सृष्टि कर सकती है, एवं जीव को सुख-दुःख दे सकती है? उसके उत्तर स्वरूप कहा गया है कि ‘अचेतनत्वेऽपि क्षीरवच्चेष्टितं प्रधानस्य’ अर्थात् जैसे दूध, संतान के लिए झरना, नदी का बहान। आदि अचेतन होने पर भी स्वयं प्रवृत्त होती है, उसी प्रकार प्रकृति अचेतन होने पर भी स्वभावतः सांसारिक सृष्टि में प्रवृत्त होती है। जैसे एक नर्तकी प्रेक्षकों को नर्तन दिखाकर विराम लेती है, उसीप्रकार प्रकृति अपनी सृष्टि पुरुष को

कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हर्ता ?!

दिखाकर विराम लेती है। पुरुष को मोक्ष प्राप्त होने के बाद वह पुरुष के पास नहीं आती है। प्रकृति बहुत सुकुमारी है। जैसे कुलवधु अकस्मात् एकबार पुरुष की दृष्टि में आते ही अपना रूप अगोचर कर देती है उसीप्रकार प्रकृति भी पुरुष के ज्ञान अर्थात् मोक्ष प्राप्ति के बाद अगोचर हो जाती है।

प्रकृति : “सत्यरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः।” अर्थात् साम्यावस्था में स्थित सत्य, रज एवं तम इन तीनों गुणों का नाम प्रधान या प्रकृति है। प्रकृति अचेतन है। पुरुष एक निष्क्रिय, निर्गुण, निर्लिप्त, सूक्ष्म इंद्रियातीत एवं अचेतन तत्व है।

प्रवाहित होने वाला प्रपञ्च विन्यास का प्रकृति ही आदि कारण एवं वही मूल है। प्रपञ्च के बहुविध गोचर प्रकारों की जन्मबृद्धि परिमित आकाश में होती है।

प्रकृतेर्महान् ततोऽहंकारः तस्माद् गणञ्च षोडशकः।
तस्मादपि षोडशकात् पञ्चभ्यः पञ्च भूतानि॥

(सांख्य) (32)

इस प्रधान से जो व्यापक, निष्क्रिय एवं एक है, उससे पहले विषय को उत्पन्न करने वाली बुद्धि उत्पन्न होती है। इसे महान् कहते हैं। महान् से ‘मैं सुंदर हूँ’ इत्यादि अहंकार पैदा होता है। अहंकार से शब्द, स्पर्श रूप, रस एवं गंध ये 5 तन्मात्रायें उत्पन्न होती हैं। स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत ये 5 ज्ञानेन्द्रियाँ व वचन, हाथ, पैर, मलस्थान, मूत्रस्थान ये 5 कर्म इन्द्रियाँ तथा मन उत्पन्न होते हैं। इसीप्रकार स्पर्श से वायु, रस से जल, रूप से अग्नि, गंध से पृथ्वी की उत्पत्ति होती है। तथा शब्द से आकाश उत्पन्न होता है। (सांख्य कारीका 32)

भेदानां परिणामात् समन्वयात् शक्तितः प्रवृत्तेच।

कारण कार्यं विभागाद् विभागाद् वैश्यरूपरत्य॥(सां 15)

विश्व के समस्त कार्यों में सत्य, रज एवं तम इन तीनों गुणों का अन्वय देखा जाता है। हर कार्य किसी न किसी को प्रासाद, लाघव, हर्ष, प्रीति ये सत्य गुण के कार्य, ताप, शोक, उद्वेग ये रज गुण के कार्य, दैन्य, विभत्सतायें तम गुण के कार्य आदि भाव उत्पन्न करता है। सत्य लघु प्रकाशक वस्तु में रहने वाले पटुत्व का ही कारण रजस, संपूर्ण चलन क्रिया का कारण है। तमस गुण है, अंधकार एवं अवरोध स्वरूप है। भौतिक वस्तुओं में भार, इंद्रियों में मान्द्य उत्पन्न करता है। प्रकाश जैसे सत्य का काम है उसीप्रकार मलीनीकरण तमस् का कारण है।

57

मूल प्रकृति रवि कति महादाया प्रकृति विकृतयः सप्तः।

षोडशः वेऽस्तु विकारो न प्रकृतिन विकृति पुरुषः॥ (सां 3)

इनमें मूल प्रकृति कारण होती है और 11 इंद्रियाँ 5 भूत-ये 16 कार्य ही होते हैं। महान् अहंकार एवं 5 तन्मात्रायें ये पूर्व की अपेक्षा कार्य एवं उत्तर की अपेक्षा कारण होते हैं। इसप्रकार सामान्य प्रधान तत्त्व से इस समस्त जगत् का विपरिणमन होता है और प्रलयकाल में उसमें लीन हो जाता है। पुरुष कमलपत्र के स्मान निर्लिप्त साक्षी चेतन और निर्गुण है। पृथ्वी आदि में संसर्घ के कारण बुद्धिरूपी माध्यम के द्वारा इसमें भोग की कल्पना की जाती है। बुद्धि दोनों ओर से पाश्वर्दर्शी दर्पण के समान है। इस मध्यभूत दर्पण में एक ओर से इंद्रियों के द्वारा विषयों के प्रतिबिम्ब और दूसरी ओर पुरुष की छाया पड़ती है। इस छाया पति के कारण पुरुष की छाया पड़ती है। इस छायापति के कारण पुरुष में भोग का मान होता है अर्थात् परिणमन तो बुद्धि में ही होता है और भोग का मान पुरुष में होता है। पुरुष का प्रतिबिम्ब प्रकृति पर पड़ने पर उसमें क्षोभ या चंचलता उत्पन्न होती है और स्वतः परिणमन करती हुई महत् आदि 23 विकारों को उत्पन्न करती है। उससे सूक्ष्म शरीर एवं स्थूल शरीर बनता है और यही सृष्टि है।

प्रलय— अदृष्ट के विषय समाप्त होने पर ये सब पुनः उल्टे क्रम से प्रकृति में लय होकर साम्यावस्था में स्थिर हो जाते हैं यही स्थिति प्रलय है। व्यक्त ही अव्यक्त है, एवं अव्यक्त ही व्यक्त है। प्रपञ्च की सृष्टि के विश्रांति के लिए 5 भूत 5 तन्मात्राओं में तिरोभाव होकर अव्यक्त होते हैं। 5 तन्मात्रायें एवं 11 इंद्रियाँ अहंकार में तिरोभूत होकर अव्यक्त होती हैं। अहंकार बुद्धि में तिरोधान होकर अव्यक्त होती है। बुद्धि प्रकृति में तिरोधान होकर अव्यक्त होती है। अचेतन वस्तु पुरुष के भोग्य है। कुछ शरीर एवं कुछ बाह्य वस्तुएँ प्रकृति रूप में ही रहती हैं।

पाश्चात्य दर्शन के अनुसार विश्व

डेमोक्रेट्स के अनुसार परमाणु अतीन्द्रिय, भागहीन, धन, उत्पत्ति एवं विनाशरहित है। उक्त समस्त गुण परमाणुओं में रहने पर भी उसके परिणाम एवं आकार में परस्पर में भिन्नता है। इस प्रकार परमाणुओं से यह विचित्र सृष्टि है। परमाणुओं से विश्व सृष्टि के लिए कारणान्तर की आवश्यकता नहीं है। परमाणु स्वाभाविक परिणाम से कार्य करने के लिए शक्ति रखता है। जड़ वस्तु परमाणु स्वरूप है। ग्रीक एपीडाकलीस के मतानुसार पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, विश्व के

कारण है। प्लेटों के अनुसार सौन्दर्य, सत्य, धर्म, सुगुण इस विश्व के सत्य हैं। यूनान के परमाणुवादी एवं एवीक्यूटीयस चेतन तत्व का निषेध करता है। हीगल के भौतिक शास्त्रानुसार विश्व अनन्त काल देश में रहने वाला ईश्वर एवं परमाणु से सिद्ध (निर्मित) हुआ है। ज्ञान, इच्छा प्रयत्न सर्व जड़ धर्म है। मनुष्य में दिखाई देने वाला ज्ञान मस्तिष्क की शक्ति से उत्पन्न होता है। बीसवीं शताब्दी में चेतना चेतन तत्व एक वस्तु का आकार भेद मानते थे। यूनान के एथोलिज आदि तत्त्वज्ञ जगत् के उपादान स्वरूप जल अथवा वायु अथवा अग्नि को स्वीकार करते हैं। उस वस्तु से जगत् सिद्ध होने के लिए चेतन की आवश्यकता है ऐसा मानते हैं। एसीडाकालिज जल, अग्नि, वायु भूमि को विश्व का उपादान मानने पर भी प्रीति-अप्रीति (Love and Hate) चेतन धर्म जगत् के निमित्त कारण मानते हैं। आनेस्का गोरस परमाणु को प्रपञ्च का उपादान कारण एवं ज्ञान को निमित्त कारण मानते हैं। आइंस्टीन आदि तत्त्वज्ञ चेतनाचेतनात्मक विश्व मानते हैं। डेकार्ट जड़-चेतन (आत्माये) रूपी विश्व मानते हैं। कुछ अर्वाचीन तत्त्वज्ञ अचेतन परिणाम वाली एवं चेतन सृति ज्ञान गुण धारण करने वाली वस्तु से विश्व सृष्टि है ऐसा मानते हैं। बिलयर्ड गेंद के समान चेतनाचेतनात्मक द्रव्य को परस्पर उपकार करने के स्वभाव वाला मानते हैं। कुछ दार्शनिक विश्व को केवल जड़ स्वरूप मानते हैं। एवं ज्ञान को जड़ का परिणमन मानते हैं।

स्वभाववाद—

को करदि कंटयाणं तिक्खतं मियविहंगं मादीणं।

विविहत्तं तु सहाओ, इदि सत्वं पिअसहाओति ॥(883)

(गो.क.)

काँटा आदि तो तीक्ष्ण वस्तु हैं उनको कौन करता है? मृग व पक्षी आदि को में जो अनेक प्रकार पना पाया जाता है, उनको कौन करता है? इस प्रकार प्रश्न होने पर यही उत्तर मिलता है कि सभी में स्वभाव ही है ऐसे सबको स्वभाव से ही मानना स्वभाववाद है।

स्वभावादियों का कथन है कि वस्तुओं की स्वतः परिणति करने का स्वभाव है। सभी पदार्थ अपने परिणमन स्वरूप के कारण ही उत्पन्न होते हैं। उदाहरणार्थ-मिट्टी से घड़ा ही बनता है कपड़ा नहीं सूत से भी कपड़ा ही बनता है घड़ा नहीं। यह प्रतिनियंत कार्य-कारण भाव, स्वभाव के बिना नहीं बन सकता। इसीलिए

कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हर्ता ?!

यह समस्त जगत् अपने स्वभाव से ही निष्पन्न है। कहा भी है—

कः कष्टकाना प्रकरोति तैक्षण्यं विचित्रभावं मृगपक्षिणांच
स्वभावतः सर्वमिदं प्रवृत्तं न कामचारोऽस्ति कृतः प्रयत्नः ॥(1)

(बुद्ध च. 9/162)

वदर्या: कण्टकस्तीक्ष्णं ऋजुरेकश्च कुञ्जितः ।
फलं च वर्तुलं तस्या वद केन विनिर्भितम् ॥(2)

(लोकतत्त्व 2/122)

यह सारा संसार स्वभाव से ही अपनी सारी प्रवृत्ति कर रहा है। इसमें किसी की इच्छा या प्रयत्न का कोई हस्तक्षेप नहीं है। बताओं (कांटों में तीक्ष्णता) नुकीलापन किसने पैदा किया, किसने उन कांटों को घिसकर पैना किया होगा? हिरण्य तथा पक्षियों के विचित्र स्वभाव किसने किये? पक्षियों के अनेक रंगों के पर उनकी मधुर कुञ्जन हिरण्य की सुंदर आँखे, उनका छलांग भरकर कूदना भागना ये सब स्वभाव से ही है।

विचार करके बताइये कि बेर के अत्यन्त नुकीले कुछ सीधे और कुछ तिरछे काँटे किसने पैदा किये? फिर उनका अत्यन्त स्वाद और गोल फल किसने बनाया? तात्पर्य यही है कि यह सब स्वभाव की ही लीला है।

अन्य कार्यों की बात तो जाने दो मूँग की दाल का पाक भी बिना स्वभाव के नहीं हो सकता। बुटलोई, ईंधन, समय आदि सभी सामग्री उपस्थित है, पर कूकड़ मूँग का पाक नहीं होता। इससे स्पष्ट मालूम होता है कि जिसमें पकने का स्वभाव है, वही पक सकता है। अन्य नहीं। इस तरह स्वभाव के साथ अन्वय-व्यतिरेक होने से समस्त कार्य स्वभाव कृत ही समझना चाहिए।

मिट्टी के घड़े को पकाने के लिए अग्नि में रखना पड़ता है। आंच की तपन से वह मजबूत बनता है—पकका होता है। ठीक उसी तरह मन को भी परिपक्व करने के लिए तप एवं तितिक्षा की अग्नि में रखना पड़ता है। तपस्या की आंच से ही वह मजबूत और शक्तिशाली बनता है।

गुरुदेव चित्रभानु

कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हर्ता ?!

विश्वका कोई एक कर्ता नहीं होने से लाभ

1. सत्य-तथ्य ऐसा (विश्व ईश्वर अकृत) होने से सत्य निष्ठा का होना।
2. स्वावलम्बन, कर्तव्यनिष्ठा, साहस, धैर्य, आत्मविश्लेषण, भूतकाल के कर्मों से शिक्षा, वर्तमान में सजग, सक्रिय, कर्तव्यशील तथा भविष्य के लिए निर्भय, आशावादी आदि का होना।

3. स्वकर्म ही स्वयं को सुख या दुःख देता है अतः सुख प्राप्त करने के लिए सुकर्म को करना एवं पापकर्म को नहीं करना। सुखके लिए एवं दुःख से निवृत्त होने के लिए भी ईश्वर, देवी, देवता या कोई प्रभावशाली व्यक्ति आदि को प्रसन्न करने के लिए भी अन्याय, पाप, हिंसा, युद्ध, भ्रष्टाचार, जीव बलि, मनौति आदि का नहीं होना।

4. यदि विश्व तथा जीवों के कोई कर्ता-धर्ता-हर्ता हैं तो कोई भी जीव स्वज्ञान, पुरुषार्थ, साधनादि से भी कोई परिवर्तन, परिमार्जन, न्यूनाधिक नहीं कर सकता है तब जीवों को किसी भी प्रकार पुरुषार्थ, बचाव, सुरक्षा, शिक्षा-दीक्षा, साधना, धर्म, भोजन, औषधि आदि की आवश्यकता नहीं है।

5. यदि ईश्वरेच्छा से ही सब कुछ होता है तब जो ईश्वर को कर्ता नहीं मानते हैं ऐसे वैज्ञानिक, डॉक्टर्स, वैद्य, दार्शनिक, धार्मिक आदि व्यक्ति भी विकास करते हैं; ईश्वरेच्छा से (कर्तावादानुसार) जो प्राकृतिक प्रकोप (सर्दी, गर्मी, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, रोगादि) होते हैं उसे भी यथासंभव दूर करते हैं। जो कर्तावाद को भी मानते हैं वे भी रोग, भूख, प्यास, सर्दी-गर्मी को दूर करने के लिए प्रयत्नपूर्वक / इच्छापूर्वक / धन व्ययादि करके भी पुरुषार्थ करते हैं। यदि ईश्वरेच्छा से ही सबकुछ होता है तो यह सब प्रयत्न क्यों करते हैं?

6. जो संपूर्ण जड़-चेतनात्मक विश्व को ईश्वर (विश्व निर्माता) द्वारा निर्मित / ईश्वरमय मानते हैं उनमें से भी कुछ ईश्वर की कृति या ईश्वरमय अन्य जीवों से घृणा करते हैं। उन्हें कष्ट देते हैं, धोखा-धड़ी करते हैं, बलात्कार करते हैं यहाँ तक कि निर्मम हत्या तक करते हैं? क्या यह ईश्वर के प्रति भक्ति / कृतज्ञता है? इससे क्या ईश्वर प्रसन्न होकर उन्हें स्वर्ग-मोक्ष दे सकते हैं? क्या ईश्वर उन्हें ऐसा करने के लिए आदेश देते हैं? क्या ऐसा आदेश देकर ईश्वर अपनी कृति या स्वयं को (क्योंकि विश्व और विश्व के जीव ईश्वरमय होने से) कष्ट

61

कौन है विश्व का कर्ता-धर्ता-हर्ता ?

देना, नष्ट करना चाहते हैं ? यदि चाहते हैं तो क्यों चाहते हैं ? यदि चाहते हैं तो वह ईश्वर क्रूर, निष्ठुर, हिंसक, विध्वंसकारी, अविवेकी हो जायेगा परन्तु ईश्वर ऐसा नहीं हो सकता है।

7. जो ईश्वर कर्तावाद नहीं मानते हैं, परन्तु उत्तम कर्म करते हैं वे सुखी रहते हैं, विकास करते हैं, वे दूसरों को कष्ट नहीं देते हैं और दूसरे भी उन्हें अच्छा मानते हैं। परन्तु ईश्वर कर्तावाद मानने वाले भी जो सुकर्म नहीं करते हैं वे सुखी नहीं रहते हैं। दूसरे भी उसे अच्छा नहीं मानते हैं। अनेक कुकर्मी कर्तावादी जो दुःखी हैं उन्हें ईश्वर सुखी क्यों नहीं बनाते हैं ?

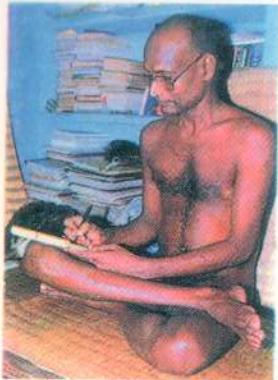
8. ईश्वर के नाम पर जो अनेकानेक मत—मतान्तरवाद, विवाद, फूट, कलह, युद्ध, वैमनस्य, हत्या होती है उसे ईश्वर क्यों नहीं रोकता है ? क्या ईश्वर को यह सब मालूम नहीं है या इसे रोकने में असमर्थ है ? या यह सब वे करवाते हैं ? करने का क्या प्रयोजन है ?

उपर्युक्त समस्त दोष ईश्वर कर्तृत्ववाद के परिवर्तन में विश्व अकृत्रिम परिवर्तनशील, स्वभाववाद तथा प्रत्येक जीव स्व-स्व विश्व का कर्ता-धर्ता-हर्ता-भोक्ता-सिद्धान्त में दूर हो जाते हैं जिसका वर्णन इस कृति में किया गया है।



मुनिश्री विद्यानंदीजी के उपाध्याय पदवी संस्कार महोत्सवमें उपस्थित श्रद्धालुगण

विज्ञानाचार्य – आचार्य
श्री कनकनंदीजी गुरुदेव



निरंतर साहित्य साधना
एवं
धर्म विज्ञान के समन्वय
में चिन्तनरत

- | | |
|--|---|
| (1) अनेकान्त सिद्धान्त (द्वि.सं.) | (24) वंधु वन्धन के मूल |
| (2) अति मानवीय शक्ति (द्वि.सं.) | (25) भाव एवं भाग्य तथा अंग विज्ञान
(सर्वांग विज्ञान की वैज्ञानिक गणेषणा) |
| (3) अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग | (26) भविष्य फल विज्ञान (द्वि.सं.) |
| (4) अनुभव चिन्तामणि | (27) मंत्र विज्ञान (द्वि.सं.) |
| (5) आदर्श विहार—आहार—विचार | (28) युग निर्माता भ. ऋषभदेव (हिन्दी/अंग्रेजी) |
| (6) आध्यात्म मनोविज्ञान (इष्टोपदेश) | (29) विश्व विज्ञान रहस्य |
| (7) उपवास का धार्मिक वैज्ञानिक विश्लेषण | (30) विश्व इतिहास |
| (8) ऋषभ पुत्र भरत से भारत (द्वि.सं.) | (31) विश्व धर्म विज्ञान (द्रव्यसंग्रह) |
| (9) कर्म का दार्शनिक एवं वैज्ञानिक विश्लेषण (द्वि.सं.) | (32) विश्व धर्म के दस लक्षण |
| (10) क्रान्ति के अग्रदूत (द्वि.सं.) | (33) शाश्वत समस्याओं का समाधान |
| (11) कथा सौरभ | (34) शांति क्रान्ति के विश्व नेता बनने के उपाय |
| (12) कथा सुमन मालिका | (35) शकुन विज्ञान |
| (13) ज्वलन्त शंकाओं का शीतलसमाधान (द्वि.सं.) | (36) शोधपूर्ण ग्रंथ तथा ग्रंथकर्ता आ. कनकनंदीजी |
| (14) जैन धर्मवलम्बी संख्या और उपलब्धि | (37) संगटन के सूत्र (द्वि.सं.) |
| (15) जीवन्त धर्म सेवा धर्म | (38) स्वप्न विज्ञान (द्वि.सं.) |
| (16) जिनार्थना (प्र.पु.) (द्वि.सं.) | (39) स्वतन्त्रता के सूघ |
| (17) दिगम्बर जैन साधु नग्न ब्रह्मों
(हिन्दी, मराठी, गुजराती, उर्दु) (१५वां संस्करण) | (40) सत्य साम्यसुखामृतम् (प्रवचनसार) |
| (18) धर्म एवं स्वास्थ्य विज्ञान (प्र. पुष्प) (द्वि.सं.) | (41) सर्वोदय शिक्षा मनोविज्ञान (वृहत) |
| (19) धर्म दर्शन विज्ञान प्रवेशिका (प्र-द्वि-तृ.पुष्प) | (42) क्षमा वीरस्य भूषणम् (तृ.सं.) |
| (20) धर्म दर्शन एवं विज्ञान (द्वि.सं.) | (43) बैलोक्य पूज्य व्रत्मचर्च (द्वि.सं.) |
| (21) ध्यान का वैज्ञानिक विश्लेषण (द्वि.सं.) | (44) Laishya Psychology |
| (22) नैतिक शिक्षा एवं सामान्य ज्ञान | (45) Philosophy of Scientific Religion |
| (23) पुरुषार्थसिद्धयुपाय (अहिंसा का विश्वरूप) | (46) Fate & Efforts |